

बुशारा के खत

माइल खैराबादी

अनुवादक

कौसर लईक

पहला खत

मेरी प्यारी आपा ! अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुह !!

मैं खत लिखने ही वाली थी कि आपका खत मिला । मझे की बात तो यह है कि मैंने वही सब कुछ लिखने के लिए सोच रखा था जो आपने पूछा है । मेरा खयाल है कि जो कुछ मेरे दिल में होता है, आपकी ज़बान पर पहले आ जाता है, या यूँ कहिए कि जब कभी आपने कुछ कहा, "मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है" ।

अब आप अपने खत का जवाब सुनिए—'वे' तहसीलदार के पेशकार हैं । मामूली वेतन पाते हैं । वेतन लाकर मेरे हाथ में रख देते हैं । फिर मैं जिस तरह चाहूँ, खर्च करूँ, कोई रोकने-टोकने वाला नहीं, मेरा बहुत खयाल रखते हैं । मैंने जिस चीज़ के लिए भी कहा, फ़ौरन उन्होंने लाकर दी । घर में मैं, वे और रज़िया ये तीन सदस्य हैं । रज़िया से हर समय कुरेद-कुरेद कर पूछा करते हैं, "तुम्हारी भाभी को कोई तकलीफ़ तो नहीं ?"

इस एतबार से मैं अल्लाह तआला का जितना शुक्र अदा करूँ, कम है । लेकिन दूसरा पहलू बहुत अंधकारमय है । डरती हूँ कि ज़बान से निकालूँ और ग़ीबत में पकड़ी जाऊँ । फिर खुदा न करे कि किसी तरह उनके कान में भनक पड़ जाए, तो जाने क्या समझें और ज़रा-सी लापरवाही से बेलुत्फ़ी पैदा हो जाए । मगर आप ही बताएँ, अगर मैं आप से न कहूँ, तो किससे कहूँ ? किससे मशविरा लूँ ? दो-चार शब्द जो मालूम हैं, यह सब आप ही की बदौलत तो है ।

आपा जान ! वे कुछ आज़ाद खयाल के मालूम होते हैं । नमाज़ पढ़ते हैं, मगर बस जुमा की । हराम को हराम समझते हैं, मगर रिश्तत को अधिक मेहनत का बदला कहते हैं । तंख़्वाह के अलावा कुछ अतिरिक्त रक़म भी रोज़ लाकर देते हैं । उन अतिरिक्त रूपयों से मैं बहुत घबराती हूँ । समझ में नहीं आता उन्हें कैसे टोकूँ ? अभी तो इस रक़म को मैं अलग रखती जा रही हूँ । आप जैसी राय देंगी, वैसा करूँगी— और सुनिए ! झूठ से उन्हें सख़्त नफ़रत है, मगर दूसरों के झूठ से । परसों इतवार की बात है । एक साहब ने बाहर से पुकारा । हज़रत अन्दर थे । रज़िया से कहा, "जाकर कह दो कि नहीं हैं ।" खुद ज़रा भी सावधानी नहीं बरतते । दुनिया के सारे मज़हबों में इस्लाम ही को सच्चा समझते हैं, मगर

ठहराव नहीं है । बाप-दादा के समय की बुरी रस्में उन्हें एकदम पसन्द नहीं । मगर बिरादरी के असर से कभी कर भी गुजरते हैं । जिन्दगी के हर मोड़ पर इस्लाम के उसूलों को बरतना जरूरी नहीं समझते । हर इतवार को सिनेमा जरूर देखते हैं । गज़ब खुदा का ! छुपे इशारों-इशारों में कई बार मुझे भी सिनेमा देखने चलने की दावत दे चुके हैं । रज़िया से कहते हैं कि “अपनी भाभी से पूछो, अगर कहें तो, तुमको और तुम्हारी भाभी को भी दिखा लाया करूँ ।” रज़िया भोली बच्ची, ज़िद करने लगती है । “अच्छी भाभी जान ! चलिए ना, जरूर चलिए । सिनेमा में थोड़े दौड़ते हैं, तो बड़ा अच्छा लगता है ।” किसी न किसी तरह में रज़िया को मनाती हूँ । मगर कब तक ? एक न एक दिन वह खुल कर कहेंगे और मुझे साफ़ इन्कार करना पड़ेगा । फिर ज़ाहिर है कि उनके दिल पर क्या असर होगा ? दीन का मतलब आपने जो मुझे बताया और कुरआन मजीद से जो कुछ मैंने समझा है, उससे उनको कोई लगाव नहीं । अल्लाह को रोज़ी देने वाला और जरूरतें पूरी करने वाला मानते हैं, मगर तहसीलदार से इतना डरते हैं, जैसे उनकी रोज़ी उसी के हाथ में है । बारह बजे रात को चपरासी बुलाने आए तो फ़ौरन हाज़िरी देने चले जाते हैं, लेकिन मुझे डर है कि अगर किसी दिन सुबह की नमाज़ के लिए जगा दूँ तो शायद कितने नाराज़ हो जाएँ और पेशानी पर न जाने कितने बल पड़ जाएँ । मतलब यह कि उनके इस रुख को कहाँ तक आपके सामने लाऊँ । आप यह समझ लें कि अख़्तर साहब इस्लाम और ग़ैर-इस्लाम का वह मिलाजुला रूप हैं, जिसमें ग़ैर-इस्लाम के अंश ज़्यादा पाए जाते हैं ।

मेरी तालीम-तरबियत आपने जिस ढंग पर की है, उसका तो यह तक्काज़ा है कि उन्हें इस्लाम पर मुतमइन भी देखूँ और एकाग्र भी । अब बताइए, मैं क्या करूँ ? एक तरफ़ उनकी मुहब्बत को देखती हूँ, बेचारे बिछे जा रहे हैं । दूसरी तरफ़ उनकी जिन्दगी में किस क़द्र अंधेरा नज़र आ रहा है । काँप रही हूँ, कहीं इस अंधेरे में हमारा वही हाल न हो जो सबीहा बाजी और उनके शौहर का हुआ । खुदा के लिए आप जल्द जवाब दीजिए और मुझे मशविरा दीजिए कि मैं क्या करूँ ? मैं आपके मशविरे के बग़ैर कोई क़दम उठाना नहीं चाहती । आप के जवाब का बेसब्री से इंतज़ार करूँगी । सलमा को प्यार और भाईजान को सलाम कह दीजिएगा ।

वस्सलाम

आपकी
—बुशरा

दूसरा-खत

प्यारी आपा !

अस्सलामु अलैकुम !!

आपका खत आए एक सप्ताह हो गया । इस अरसे में मैं नहीं बता सकती कि कितनी बार उसे पढ़ चुकी हूँ । जब तक “वे” घर में रहते हैं, उनकी सेवा में लगी रहती हूँ । इधर वह कचहरी गए कि मैंने आप का खत निकाला और लगी पढ़ने । न जाने क्या बात है आपकी लिखावट में कि जितना पढ़ती हूँ, उतना ही और पढ़ने को जी चाहता है । जब पढ़ती हूँ, एक न एक नई बात ज़रूर पाती हूँ । है तो आपका खत कहने को ज़रा-सा, लेकिन सचमुच आपने कूजे में दरिया समा दिया है । मैंने एक बार एक लेख लिखकर आपको दिखाया था तो आपने उसे देखने और सुधार करने के बाद यह पंक्ति लिख दी थी—

“अल्लाह करे ज़ोरे क़लम और ज़्यादा ।”

मैं आप से छोटी हूँ, पता नहीं, मैं यह पंक्ति आप को लिखकर भेज सकती हूँ, या नहीं ?

आपा ! आपके समझाने का ढंग कुछ ऐसा है कि एक-एक बात दिल में बैठ जाती है । मैं अल्लाह तआला का लाख-लाख शुक्र अदा करती हूँ, जिसने आप जैसी अच्छी आपा मुझको दी है । तन्हाई में जब आपकी नसीहत और मुहब्बत की मिली-जुली बातें पढ़ती हूँ, तो देर तक आपका खयाल बना रहता है । आप के खत से मुझे एक ओर जहाँ नसीहत मिलती है वहीं दूसरी ओर बड़ी तसल्ली मिलती है, उसे पढ़कर बड़ा सुकून मिलता है । उस पर अमल करके इस हफ़्ते बेहद फ़ायदा हुआ ।

मैंने आपके लिखने के मुताबिक “उनको” बिल्कुल नहीं छोड़ा । रज़िया को पढ़ाना शुरू कर दिया है । रज़िया माशाल्लाह बड़ी होशियार बच्ची है । है तो अभी कुल साढ़े चार साल की, लेकिन अल्लाह ने उसे बड़ा अच्छा ज़हन दिया है । एक बार जो बता देती हूँ, तुरन्त याद कर लेती है । दस दिन में पन्द्रह-सोलह अक्षर लिखना-पढ़ना सीख चुकी है और छः शब्दों को भी पहचान लेती है । आपा, आम, ला, अल्लाह, एक, है । इन छः शब्दों को पास-पास लिख दो तो पूरा वाक्य भी पढ़ लेती है ।

जैसा कि आपने लिखा है, मैंने उसी तरह रज़िया से ज़बानी बात-चीत का सिलसिला शुरू कर दिया है । उससे ज़बानी बातचीत रात को सोने से पहले होती है । प्यारे

रसूल (सल्ल०) की प्यारी बातें, नबियों के किस्से, सहाबा किराम (रजि०) के हालात और घटनाएँ जो भी उस समय याद आ जाती हैं, आसान शब्दों में कहानी के रूप में सुनाती हूँ। रजिया हूँ-हूँ करती रहती है और हूँ-हूँ करते-करते मेरी गोद से नींद की गोद में पहुँच जाती है। इन दस दिनों में वह पहले से ज़्यादा मुझ से हिल-मिल गई है और बग़ैर कोई किस्सा सुने उसे नींद नहीं आती।

आपा ! आप के बताए हुए इस तरीके पर अमल करने से मैंने अख़्तर साहब के दिल में और भी जगह बना ली है। एक दिन कहने लगे- “मेरा ख़याल था कि जिस तरह आम तौर से दूसरे घरों में नंदों और भाभियों में चख-चख मची रहती है, उसी प्रकार हमारे यहाँ भी होगा। लेकिन मुझे विश्वास होता जा रहा है कि हमारे यहाँ ठीक उसके खिलाफ़ होगा।”

यह सुनते ही मैंने उनकी आवाज़ में आवाज़ मिलाकर “इंशाल्लाह” कहा। अब मेरी हिम्मत भी बढ़ गई है। अल्लाह ने चाहा तो रजिया की ओट में मैं उनको दीन की ओर मोड़ने और यकसू करने में ज़रूर सफल होऊँगी। फ़िलहाल तो मैं आपकी उस नसीहत पर अमल कर रही हूँ कि किसी तरह मैं उनके दिल को हाथ में ले लूँ। लेकिन आपा ! खुदा के लिए कहीं आप मुझे बीच में न छोड़ दीजिएगा। मुझे मशविरा ज़रूर देती रहिए। यह तो आप जानती ही हैं कि मैं आपके मशवरों की कितनी ज़रूरतमंद और मुहताज हूँ। प्यारी सलमा तो अब गूँ-गाँ करने लगी होगी, उसे मेरी तरफ़ से प्यार कीजिएगा और भाई जान को सलाम। भाई जान से यह भी कह दीजिएगा कि मैं बहुत आराम से हूँ, फ़िक्र करने की कोई बात नहीं।

वस्सलाम

आपकी
-बुशरा

तीसरा खत

तौबा है तौबा, आपा जान !!

इस बार के खत में तो आपने ऐसी डाँट पिलाई कि मैं तो डर ही गई। देखिए, इस खत के लिखते समय मुझ पर ऐसा डर छाया हुआ है कि खत लिखना तो शुरू कर दिया, लेकिन सलाम लिखने का ध्यान ही न रहा।

मेरी अच्छी आपा ! अल्लाह के लिए मेरी ग़लती माफ़ कर दीजिए। अपने पिछले दोनों खतों में अल्लाह का शुक्र अदा करते-करते मैं कुछ ऐसा बेखबर-सी हो गई कि कुछ खयाल न रहा। अब तौबा करती हूँ, कभी आपकी तारीफ़ का एक लफ़्ज़ न लिखूंगी। मेरे मुँह में मिट्टी भरने को क्यों कहती हो, समझो कि भर दी।

आपका यह कहना बिल्कुल सही है कि अल्लाह अगर तौफ़ीक़ न दे तो इंसान के बस का काम नहीं, और आपका यह कहना भी ठीक है कि अगर इंसान में काम करने की लगन हो, तो अल्लाह बिल्कुल अनोखे तरीक़े से मदद करता है। इसका तजुर्बा मुझे इसी हफ़्ते हुआ।

परसों मैं इशा की नमाज़ पढ़ रही थी। 'वे' एक तरफ़ आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे और रज़िया मेरे मुसल्ले पर बैठी इस बात की प्रतीक्षा कर रही थी कि मैं नमाज़ पढ़ चुकूँ तो उसे किससे सुनाऊँ। जब उससे रहा न गया तो उस वक़्त जब मैं वित्र की नमाज़ में दुआ-ए-कुनूत पढ़ रही थी, उसने कहा— "भाभी, नमाज़ पढ़कर जल्दी आइए।"

'वे' आराम कुर्सी पर बैठे थे, रज़िया को नमाज़ में दखल देते देखकर "शुश-शुश" करके बोलने से मना किया। बेचारी रज़िया चुप रही। जब मैं नमाज़ पढ़ चुकी, तो उसने भोलेपन से कहा, "भाभी जान ! इस वक़्त आप नमाज़ न पढ़ा करें।" मैंने कहा— "क्यों ?" वह बोली, "कहानी में देर हो जाती है।"

मैंने उसे प्यार करके कहा, "अगर नमाज़ न पढ़ूंगी तो अल्लाह मियाँ नाराज़ हो जाएँगे।"

"अल्लाह मियाँ नाराज़ हो जाएँगे ?" रज़िया ने वाक्य को दुहराया और कहने लगी, "तो फिर मुझ से भी अल्लाह मियाँ नाराज़ हो जाएँगे।" मैंने कहा— "नहीं, तुम अभी बच्ची हो, तुमको अभी नमाज़ आती कहाँ है ? हाँ, अगर बड़ी होकर नमाज़ न पढ़ोगी तो सचमुच अल्लाह मियाँ नाराज़ हो जाएँगे।"

यह सुनकर उसने कुछ सोचा, एक नज़र "उन" पर डाली, फिर बोली— "और

भाई जान भी तो.....” न जाने क्या सोचकर कहते-कहते अचानक रुक गई । वह जो कुछ कहना चाहती थी, उसे मैंने भी समझ लिया और आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे ‘वे’ भी समझ गए । खिसियानी हँसी हँसने लगे । दौड़कर रजिया को दोनों हाथों से उठा लिया और झेंप मिटाने के लिए उसे सीने से लगा कर प्यार करने लगे ।

खैर बात आई-गई हो गई, मगर देखिए तो रजिया की यह कहाँ की बात कहाँ जाकर तीर की तरह चुभी । रजिया उनकी गोद से उतरकर मेरे पास आई । मैंने उसे कहानी सुनाना शुरू किया, वह कहानी सुनते-सुनते मेरे सीने ही पर सिर रख कर सो गई । थोड़ी देर के बाद मेरी आँख भी लग गई ।

मैं सुबह सोकर उठी तो आहट पाकर ‘वे’ भी जागे । उठे और रोजाना के कामों से फ़ारिग हुए, तौलिया लिया और बाहर निकल गए । मैंने पूछा— “कहाँ ?” कुछ जवाब नहीं दिया । सूरज निकलने के बाद लौटकर घर वापस आए, तो मैंने उनके माथे पर सजदे का निशान देखा । मैंने पूछा— “माथे पर यह मिट्टी कैसी लगी है ?” मेरे इस पूछने पर उन्होंने झट माथा पोछ लिया, पर कुछ बताया नहीं । लेकिन मैं पूरी बात समझ गई कि आज नमाज़ियों ने बड़ी खुशी से और बेनमाज़ियों ने बड़ी हैरत से उन्हें देखा होगा ।

आपा ! आप समझ सकती हैं कि आज मुझे कैसी खुशी है । मैंने अल्लाह का शुक्र अदा किया । अगर अल्लाह की मेहरबानी साथ रही, जिसका भरोसा पहले भी था और अब भी है, बल्कि अब तो मेरा हौसला बढ़ गया है, तो इशाल्लाह अब मेरा घर सही मानों में एक मुस्लिम घर बन जाएगा । मेहरबानी करके अब आप वह किताब भी भेज दीजिए, जो आपने मुझे पढ़ाई थी । नमाज़ के बारे में है — जाने क्या नाम है उसका ?”

अगर इस समय उन्हें नमाज़ के बारे में पूरी बात न बताई गई तो अंदेशा है कि उनकी नमाज़ जोशीले नौजवानों जैसी साबित होगी और दो-चार, दस-पांच दिन के बाद जोश ठण्डा होने पर वे नमाज़ भी छोड़ बैठेंगे ।

मैंने इरादा किया था कि हर पन्द्रहवें दिन आपको खत लिखा करूँगी, मगर उनके नमाज़ पढ़ने की खुशी में यह खत पहले ही लिख रही हूँ । खुदा करे आप सब खैरियत से हों । खत में आप सलमा का हाल भी विस्तार से लिखा कीजिए । जी लगा रहता है । भाई जान को सलाम कह दीजिए ।

वस्सलाम

आपके मशविरों की मुहताज
—बुशरा

चौथा खत

आपाजान ! अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुह !!

यह आपने अच्छा किया कि नमाज़ की किताब के साथ-साथ ईमान और इस्लाम के बारे में भी किताबें भेज दीं। कल आपका खत मिला था। मैं कल ही से इन किताबों का इन्तिज़ार कर रही थी। आपके खत से यह बात मेरी समझ में आ गई कि “इन्हें” इस्लामी शिक्षाओं के बारे में किताबें तरतीब से दिखाई और पढ़ाई जाएँ। मेरे बिस्तर पर किताबों का बण्डल देखकर पूछा कि इसमें क्या है ? मैंने कहा : “आपा जान ने कुछ किताबें भेजी हैं।” वे बण्डल देखने लगे। मैंने कहा, “बिस्मिल्लाह, खोलकर देखिए, मैं आपकी हूँ, तो मेरी हर चीज़ आपकी है।”

मेरी यह बात सुनकर वह मुस्कुरा दिए और फिर बण्डल खोला। किताबों को उलट-पलट कर देखा। पहले तो टाइटिल पर सरसरी-सी नज़र डाली। “ईमान की हक़ीक़त” उन्होंने उठा ली। मेरी ख़्वाहिश भी यही थी कि वे “ईमान की हक़ीक़त” पढ़ें। मेरे हाथ जो किताब लगी, मैंने तो यूँ ही उसके एक पन्ने पर नज़रें जमा दीं।

“ईमान की हक़ीक़त” लेकर वे उसी जगह पलंग पर बैठ गए। अब मैंने उनके पास रुकना उचित न समझा। मैं वहाँ से खिसक ली। वे बड़ी लगन से किताब पढ़ने लगे। कभी-कभी मैं उन्हें देख लेती थी। सचमुच उनका जी किताब में लग गया था। वे आमतौर से उपन्यास और कहानियाँ पढ़ते हैं, इसलिए मैं डर रही थी, कहीं वे किताब को नापसन्द न कर दें। पर आपा, मानना पड़ेगा कि यह किताब बड़ी ज़ोरदार है। वे उसे पूरा पढ़ कर ही उठे। मुझसे कहा—

“आप बड़ी मुल्लानी बनती हैं, लीज़िए पहले यह किताब पढ़कर पक्की मुसलमान तो बनिए।”

मैंने अपने दिल में कहा— मानो जनाब यह समझते हैं कि मैंने इस किताब को पढ़ा ही नहीं। मगर मैंने उस वक़्त आपकी उस नसीहत पर अमल किया, जो आप अक्सर नई-नवेली दुल्हनों को बताया करती हैं कि ‘ससुराल में हाथ लम्बे और ज़बान छोटी रखनी चाहिए।’ आपका यह लम्बे हाथ और छोटी ज़बान वाला मुहावरा तो मुझे कभी पसन्द न आया, मगर मैंने अमल उसी पर किया। जब इन्होंने “ईमान की हक़ीक़त” मेरी तरफ़ बढ़ाई, तो मैंने चुपचाप ले ली और किताब “इस्लाम” उन्हें थमा दी, उस किताब को लेते हुए कहने लगे— “मुल्लानी जी !

हकीकत तो अब समझ में आई है, जब यह ज़रा-सी किताब पढ़ी । अभी तक हम ईमान व इस्लाम से कोरे ही थे ।”

मैंने उनके इस “कोरेपन” पर कुछ नहीं कहा और न मैंने यही बताया कि मैं ये किताबें पढ़ चुकी हूँ । आपा ! अब तो आसार बहुत अच्छे दिखाई दे रहे हैं । आज शाम तक बैठे किताबें ही पढ़ते रहे । सिनेमा भी नहीं गए । मुज़फ़्फ़र साहब ने मग़ारिब से पहले पुकारा भी, मगर उनसे कह दिया, “भई आज नहीं जाऊँगा, जी नहीं चाहता चलने को ।” मुज़फ़्फ़र साहब बाहर ही बाहर चले गए ।

किताबों की यह बरकत देखकर मेरी ख़ुशी की हद न रही । कहाँ तो मैं डर रही थी कि कहीं मुझ से न कह बैठें कि चलो, पिक्चर देख आएँ, लेकिन अब खुद टाल दिया । आपा, आपके कहने के मुताबिक़ यह सब अल्लाह की मेहरबानी है । बन्दा जब उसकी ओर एक इंच बढ़ता है तो वह अपने बंदे की ओर कई-कई गज़ बढ़ता है और इसकी मिसाल ‘वे’ साहब हैं, जिन्हें मैं अपना सरताज समझती हूँ और जिनसे आपने मेरी ज़िन्दगी का दामन बाँध दिया है ।

रज़िया अब दो अक्षर वाले शब्द पढ़ती है । दफ़्ती के एक कार्ड पर मैंने लिखा, “दस दिन रह ।” वह कार्ड लिए-लिए इधर-उधर फिरती रही । बाहर ले गई, ख़ालिदा के साथ देर तक खेलती रही । ख़ालिदा तो ख़ैर अच्छा खासा पढ़ गई है । एक दिन उसके घर उसे नमाज़ पढ़ते देख लिया, बस फिर आकर मेरे सिर हो गई, कहने लगी, “भाभी जान ! अब मुझे भी नमाज़ सिखा दीजिए, देखिए ख़ालिदा नमाज़ पढ़ती है, मुझसे दो अंगुल ही तो बड़ी है और हाँ, भाभी जान ! यह तो बताइए ! मैं बड़ी कब होऊँगी । अभी मेरे नमाज़ न पढ़ने से अल्लाह मियाँ नाराज़ तो नहीं होते ?”

देखिए आपा ! है न रज़िया दिमाग़ की तेज़ । कब की बात है, अब तक उसे याद है कि नमाज़ न पढ़ने से अल्लाह मियाँ नाराज़ होते हैं । अल्लाह उसे बुरी नज़रों से बचाए । मेरे सरताज के लिए कुछ किताबें आप और भेज दें । वे कहते हैं कि ‘आपा के पास जब ख़त लिखो मेरा भी सलाम ज़रूर लिखो और किसी मौक़े पर उन्हें आने की दावत भी दो ।’

देखिए आपा ! साफ़ पता चलता है कि वे अब हमारी ओर काफ़ी मुड़ चुके हैं । मैं सोचती हूँ कि किसी खास मौक़े पर आप को और भाई जान को यहाँ आने का कष्ट दूँ । सबसे हमारा सलाम कहें ।

वस्सलाम

आपकी बुशरा

पाँचवाँ खत

आपा ! हज़ारों सलाम हों आप पर!! क्या ख़ूब तरकीब बताई है आपने । अरे तौबा ! देखिए, मैं फिर आप की तारीफ़ करने लगी । आपा ! अगर भूले से कभी ऐसा वाक्य क़लम से निकल जाए, तो माफ़ कर दीजिएगा । इस बार आपने जो ख़ास तब्लीग़ की तरकीब बताई है, वह यक़ीनन कामयाब है ।

मैंने आपके कहने के मुताबिक़ 'इन' से अर्ज़ किया कि आपा जान ने जो किताबें भेजी हैं, उन्हें मैं पढ़ तो लेती हूँ, लेकिन अगर आप रोज़ाना दस-पाँच मिनट उनकी व्याख्या कर दिया करें तो फिर सारी बातें ज़हन में बैठ जाएँगी और फिर आपके कहने के अनुसार मैं पक्की मुसलमान बन जाऊँगी ।

मेरी यह बात उन्होंने फ़ौरन मान ली । मुझे पढ़ाने लगे, पढ़ाने से पहले ख़ुद तैयारी करते हैं । कई रोज़ व्याख्या की तैयारी करते-करते अब वही शब्द उनकी ज़बान पर भी आने लगे हैं, जो आप कहा करती हैं, यानी ईमान का तक्काज़ा यह है कि अल्लाह की याद सिर्फ़ नमाज़ ही में नहीं होनी चाहिए, बल्कि जीवन के हर मैदान में उसके आदेशों का पालन ज़रूरी है । जहाँ कहीं व्याख्या में कुछ कमी रह जाती है, तो मैं तुरन्त सवाल कर बैठती हूँ, तो वह मेरे ज़हन की तारीफ़ करके दोबारा व्याख्या तफ़्सील के साथ करते हैं ।

यह एक ऐसा ख़ामोश और असरदार तरीक़ा है कि जहाँ एक ओर मेरा इल्म ताज़ा हो रहा है, वहीं दूसरी ओर उनके दिमाग़ में तौहीद के तक्काज़े बैठते जा रहे हैं ।

एक दिन बड़ा मज़ा आया । रज़िया ने इनकी ज़बान से सुना कि नफ़्स जब तक अपने क़ाबू में नहीं होता, तब तक ज़िन्दगी के हर मैदान में अल्लाह के हुक़म पर चलना व अमल करना मुश्किल है । रज़िया ने पूछा, “भाईजान ! यह “नस्फ़” क्या होता है ?” रज़िया के इस ‘नस्फ़’ पर हम दोनों ख़ूब हँसे । उन्होंने समझाया— “बनो ! नस्फ़ नहीं, नफ़्स है । नफ़्स के माने यह है कि जो जी में आए वही करना ।” यह कहकर उन्होंने मेरा जायज़ा लिया, मानो रज़िया के परदे में उन्होंने मुझे समझाया, फिर यह देखा कि मैं कितनी प्रभावित हुई हूँ । मैंने कहा, “बहुत ख़ूब” मैं उनके फेर में थी । अब उनकी यह इच्छा है कि मैं अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में अल्लाह के आदेशों का पूरा-पूरा ख़याल रखूँ । मैंने दिल-ही-दिल में अल्लाह का शुक्र अदा किया ।

तीनों किताबें जो आपने भेजी हैं, उन्हें वे व्याख्या और विस्तार के साथ मुझे दोबारा पढ़ा चुके हैं । कहते हैं कि ऐसी ही किताबें कुछ और होतीं, जिनसे ज़हन

और साफ़ होता और वे बातें जो इस्लाम के सम्बन्ध में खटक रही हैं, दूर हो जातीं। मैंने पूछा, “वे कौन-सी बातें हैं, जो खटक रही हैं ?” वे कहने लगे, “तुम औरत ज्ञात हो, ऐसा न हो कि सुनकर फ़िल्में में ग्रस्त हो जाओ और मैं अकारण गुनाहगार होऊँ।

आपा ! आप अन्दाज़ा लगाइए कि अब ‘वे’ किस चीज़ की तलाश में हैं और कितनी एहतियात और सावधानी बरतने लगे हैं।

यह सब कुछ है, लेकिन उनमें अब तक कोई ऐसी अमली तब्दीली नहीं आई, जो इस्लाम चाहता है। जब तफ़रीह के मूड में होते हैं, तो कुछ-न-कुछ झूठ बोल जाते हैं। “अतिरिक्त मेहनत की मज़दूरी” अब भी कुछ रूपों की सूत में आती रहती है। ज़्यादा तो नहीं, फिर भी इतवार को सिनेमा देखने चले ही जाते हैं। सबसे ज़्यादा चिन्ताजनक बात यह है कि ईमान की रौ में आकर अब वे खुद मुसलमानों पर एतराज़ कर जाते हैं। यह आखिरी बात उनमें बड़े ही ग़लत ढंग से प्रवेश कर रही है। पहले तो इसका लेश मात्र भी न था और शायद इसकी वजह यह थी कि ईमान व इस्लाम के तकाज़े उन पर वाज़ेह नहीं थे। इसलिए मेरी इच्छा है कि अब कोई ऐसी किताब भेजें, जिससे वे हराम और हलाल में फ़र्क करने लगे और रिश्तत से बाज़ आ जाएँ। ज़बान जो तेज़ होती जा रही है, वह क़ाबू में आ जाए, बाक़ी अल्लाह का फ़ज़्ल है। मैं ज़बानी छेड़-छाड़ व बहस करना नहीं चाहती, क्योंकि बहस और ज़बानी बातचीत में अकारण हार-जीत की भावना उभर आती है और मत्सद हासिल नहीं होता। रही किताब तो वह अपना काम ख़ामोशी के साथ करती रहती है। उससे किसी को कितना भी मतभेद या सहमत क्यों न हो जाए कुछ बोलती ही नहीं। कोई खुश हो तो किताब चुप है और कोई उसके किसी लेख पर नाक-भौं चढाए, तो वह चुप है, लेकिन अगर वाक्यों में जान है तो वह अपना काम कर ही जाती है।

मेरी राय है कि आप कोई ऐसी किताब भेजें जिसमें रिश्तत को अक्ली दलीलों से रद्द किया गया हो और दूसरी किताब उस ढब की हो जिसमें वह तरीक़ा बयान किया गया हो जिस तरीक़े पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने लोगों को दीन की ओर बुलाया था। जिसमें यह बताया गया हो कि आप (सल्ल०) ने किस तरह धैर्य और संयम से दूसरों तक अल्लाह का संदेश पहुँचाया। यह तो मेरी राय है। आगे आप खुद समझ कर उचित किताबों का चयन करें। आपकी पसंद मेरी पसंद से बहरहाल बेहतर होगी।

आपने लिखा था कि सलमा के दाँत निकल रहे हैं। अल्लाह उसे अपनी हिफ़ाज़त में रखे। आपके लिखने के मुताबिक़ असली शहद भेज रही हूँ। मिलने की इत्ला दें तथा मेरा और इनका सलाम क़बूल फ़रमाएँ। सलमा की ख़ैरियत से जल्द आगाह करें, दिल लगा है।

वस्सलाम

आपकी बुशरा

छठा खत

मेहरबान आपा !

अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुह !!

इस बार आप का खत रज़िया के भाईजान ने लाकर दिया । खत और किताबों का बण्डल लिए हुए जल्दी-जल्दी आए, अन्दर आते ही पुकारकर कहा, “ए जी !, कहाँ हैं आप ? यह देखिए आप की आपा का खत आया है । खत आपके नाम है और किताबें मेरे नाम भेजी हैं ।”

मैं बैठी रज़िया को पढ़ा रही थी, वे आकर मेरे पास तख्त पर बैठ गए, खत मुझे दे दिया और किताबें खुद खोलने लगे । मैं भी बण्डल की डोरियाँ खोलने में उनका हाथ बटाने लगी । शौक भी अजीब चीज़ होती है । उन्होंने चट-चट झटके से डोरियाँ तोड़ डालीं, किताब निकाली और हाथ में लेकर देखने लगे । मैं भी किताब देखने लगी, खोला तो अंग्रेज़ी की किताब निकली । उन्होंने मेरी ओर देखकर बड़े ज़ोर का क़हक़हा लगाया और फ़रमाया— “क्या समझीं आप ?” वास्तव में मैं कुछ न समझ सकी । मैंने पूछा, “क्या नाम है, इस किताब का ?” कुछ गिटपिट-गिटपिट नाम बताया, भला मैं क्या समझूँ, मैंने पूछा, किस विषय पर है ?” कहने लगे— “आखिरत से संबंधित है ।” इसके बाद वे किताब की शायद भूमिका देखने लगे और मैंने आपका खत पढ़ना शुरू कर दिया । आप कहेंगी कि बुशारा तारीफ़ किए बग़ैर नहीं मानती, मगर मैं क्या करूँ ? मजबूरन मुँह से वाह निकल ही जाती है । वास्तव में उन्हें आखिरत ही से संबंधित किताबों की ज़रूरत थी । आपका चयन सही है । इरादा है कि मैं भी उनसे तर्जुमा सुनूँ । यक़ीन है कि किताब अच्छी साबित होगी । फिर अंग्रेज़ लेखकों के बारे में भाईजान का कहना भी याद आ रहा है कि वे बग़ैर जाँच-पड़ताल और दलील के कोई बात स्वीकार नहीं करते । इस किताब के बारे में उनका विचार है कि कोई अंग्रेज़ लेखक भी इस तरह क्या लिख सकेगा ।

किताब चूँकि बहुत मोटी है, पढ़ने में पन्द्रह-बीस दिन लगेगे । उन्होंने मुझे तो अभी कुछ बताया नहीं । बड़े गौर-फ़िक्र के साथ दस बजे रात तक पढ़ते रहते हैं । कुछ नोट भी लिखते जाते हैं । कभी-कभी मैं पूछती हूँ कि कुछ मुझे भी बताइए, तो कह देते हैं— “ज़रा पहले मैं पूरी किताब पढ़ लूँ ।” मुझ से उन्होंने पूछा, “क्या आपा अंग्रेज़ी भी पढ़ी हैं ?” मैंने बताया कि अंग्रेज़ी तो उन्हें बिलकुल नहीं आती । हाँ, शायद भाईजान ने मँगाई हो और आपा ने आपके पास भेज

दी हो ।” इस बात से वह बहुत प्रभावित हुए । कहने लगे— “तुम्हारे घर वाले कितने अच्छे लोग हैं । अल्लाह उन्हें इसका अच्छा बदला दे । इस किताब के पढ़ने से मेरे मन की सारी उलझनें खत्म हो गईं । मैं समझता था कि ‘आखिरत’ बस एक ढोंग है, मगर नहीं, वह एक सच्चाई है । काश कि कोई इस किताब का तर्जुमा उर्दू, हिन्दी और दूसरी भाषाओं में कर डाले तो इससे आम लोग भी लाभ उठा सकें और देखें कि मुहम्मद (सल्ल०) ने जो कुछ कहा, वह किस तरह सत्य पर आधारित है ।”

उनकी ज़बान से यह बात सुनकर मैं फूली न समाई । ख़ास तौर से जब उन्होंने यह कहा कि वास्तव में हमारे पास जो कुछ है, सब अल्लाह की अमानत है, एक दिन सारी चीज़ों का हिसाब देना होगा । मैंने कहा— “हिसाब का क्या मतलब ?” कहने लगे, “यह ज़बान जो अल्लाह मियाँ ने दी है, इसका भी हिसाब एक दिन उसके सामने देना होगा । जिसने यह ज़बान दी है, यह हाथ और पैर, यह कान और नाक, यह दिल और दिमाग, यह घर और साज़ो सामान, मतलब यह कि वे सारी चीज़ें जो पालनहार ने दी हैं वास्तव में ये हमारी नहीं हैं, बल्कि जिसने इन्हें बनाया है, उसी की हैं । थोड़े दिनों के लिए हमें अमानत के तौर पर दे रखा है । देखो, हम सब इंसान बड़ी सख्त आजमाइश में डाल दिए गए हैं । जिनका जितना ऊँचा दर्जा है वे उतनी ही बड़ी आजमाइश में हैं । यह जो इंसान को ज़रा-सा अधिकार व आज़ादी दे दी गई है तो यह बे-मक़सद नहीं है । इंसान जानवरों की तरह नहीं है जो पैदा हुए, खाया-पिया और मर गए, न पूछताछ का डर न जांच पड़ताल का अंदेशा ।”

आपा ! वे इस किताब से इतना प्रभावित हैं कि एक दिन रात को लगभग ग्यारह बज रहे होंगे, एक नींद सोकर जो मेरी आँख खुली तो देखा कि वे सिर पकड़े बैठे हैं और कह रहे हैं— “काश कि मैं एक तिनका होता, और तिनके की तरह अपना जीवन व्यतीत करके खत्म हो जाता और आखिरत की जवाबदेही से बच जाता ।”

उस रात मेरी नींद भी उचट गई । वे रात भर बेचैन रहे, बार-बार सोते में चौंक पड़ते । सुबह को मुझसे कहने लगे— “बुशारा ! (मैंने आज पहली बार उनके मुँह से अपना नाम सुना, समझ गई कोई ख़ास बात ज़रूर है । मैं एकचित्त होकर सुनने लगी ।) बुशारा ! अब क्या होगा ?” मैंने कहा, “ख़ैरियत तो है ? आज मैं आपको बहुत बेचैन देख रही हूँ ।” कहने लगे— “जो कुछ मुझे मालूम है, अगर तुम्हें मालूम होता तो रोतीं और आठ-आठ आँसू रोतीं ।” मैंने फिर कहा, “कुछ कहिए तो ?” कहने लगे— “क्या कहूँ, अल्लाह ने जो कुछ दिया, उसे किस तरह उसकी मज़ी

के खिलाफ़ इस्तेमाल किया ! बुशरा ! इन हाथों का मैंने ग़लत इस्तेमाल किया । इन पैरों से उस तरफ़ गया जिधर जाने से अल्लाह ने मना किया है । यह ज़बान अल्लाह से निडर होकर हमेशा कैंची की तरह चलाता रहा । दिमाग़ से जो कुछ सोचा अल्लाह के खिलाफ़ सोचा, जो कुछ किया नफ़्स की खातिर किया । हाय ! अब कैसे इस कमी को पूरा करूँ ?”

आँसू उनकी आँखों में झलकने लगे । देर तक हम दोनों चुप बैठे रहे । रज़िया बेचारी कभी मुझे देखती कभी उन्हें । आखिर उससे रहा न गया, मुझसे पूछने लगी— “भाभी जान ! भाईजान आज क्यों रो रहे हैं ?” मैंने चाहा कि कुछ रज़िया से कहूँ कि उन्होंने हाथ बढ़ा कर उसे गोद में ले लिया । गले से लगाते हुए कहा, “बेटा ! अल्लाह मियाँ हमसे बहुत नाराज़ होंगे ।”

भाई जान की ज़बान से यह सुना तो रज़िया चहक कर बोली, “तो इसमें रोने की क्या बात है, तौबा कर लीजिए । भाभी जान ने मुझे बताया है कि अल्लाह मियाँ बड़े अच्छे हैं, जब उनसे माफ़ी मांगो, तो माफ़ कर देते हैं ।”

रज़िया के ये शब्द वे थे जो मैं उससे अक्सर कहा करती हूँ । यह सुनकर उन्हें कुछ तसल्ली हुई, मेरी तरफ़ देखा । मैंने निगाहें नीची करके कहा, “ला तक़नतू मिर्रह्मतिल्लाहि” अर्थात् अल्लाह की रहमत से मायूस न हो । कहने लगे, “सच है ।” इसके बाद क्या हुआ, यह अगले खत में लिखूंगी । भाई जान और आप को मेरी और उनकी ओर से सलाम ।

सलमा के दाँत निकल रहे थे, उसकी खैरियत से जल्द आगाह कीजिए ।

वस्सलाम

आपकी खैरियत चाहने वाली
आपकी— बुशरा

सातवाँ खत

आपा जान !

अस्सलामु अलैकुम !!

परसों जुमे को वे कचहरी नहीं गए । मैंने वजह पूछी तो बोले : “मैंने आज की छुट्टी ले ली है, एक मशविरा तुमसे करना है ।”

मैंने कहा, “कहिए, मैं बिल्कुल फुर्सत में हूँ ।” कहने लगे-

“वह जो उस दिन डेढ़ सौ रुपये मैंने लाकर तुम्हें दिए थे और कहा था कि दो साल का मँहगाई भता है, दरअसल यह सब मेरा झूठ था । ये रुपये एक ज़मींदार से रिश्वत में मिले थे । ज़मींदारी जो ज़ब्त हुई, उसमें मैंने डेढ़ सौ रुपये लेकर मुकद्दमे का कुछ का कुछ कर दिया था । तहसीलदार साहब के दस्तखत भी करा लिए । अब डर रहा हूँ कि तहसीलदार को तो धोखा दे दिया, मगर अल्लाह जो हर जगह मौजूद है और सब कुछ देखता है वह मेरी इन सब करतूतों को देखता रहा है, उससे तो कुछ भी नहीं छिप सकता । आखिरत में यहाँ खाया-पिया सब कुछ उगलवा लिया जाएगा । हाय ! न जाने कितना पैसा लाकर मैंने तुम्हें अतिरिक्त मेहनत का फल कहकर दिया । हालाँकि वे सब रिश्वत के पैसे थे । अफ़सोस ! मैंने तुमको भी हराम कमाई खिलाई । खुद गुनहगार हुआ और तुमको भी ले डूबा । अब कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे इस रिश्वत की तलाफ़ी कर सकूँ । काश, वह सारी रक़म होती तो आज ही जिन-जिन से लिया है, जाकर उन्हें दे आता और माफ़ी भी माँग लेता । अब मैंने तय कर लिया है कि एक पैसा नाजाएज़ तरीक़े से घर में नहीं लाऊँगा । मगर तुम भी तैयार रहो कि बस इस थोड़े-से वेतन में ही दाल-दलिया खाकर और मोटा-झोटा पहनकर जिन्दगी गुज़ारनी होगी और इसमें तुम्हें मेरा साथ निभाना होगा । और अगर नहीं, तो अभी बता दो । नाज़ो-नेमत की पत्नी हो, ऐसा न हो कि आमदनी की कमी से अरमान पूरे न हों, खाने-पहनने को अच्छा न मिले तो शिकवा-गिला कर बैठो और फिर आए दिन घर में चख-चख मची रहे ।”

उन्होंने यह और इसी तरह की एक लम्बी तक़रीर कर डाली और मेरा यह हाल कि खुशी के मारे फूली न समाती थी । जब वह शान्त हुए तो मैंने कहा, “इस राह में मैं आपका साथ मरते दम तक दूँगी और देखिएगा कि इस थोड़ी-सी तनख्वाह में अल्लाह ऐसी बरकत देगा कि आप खुश हो जाएँगे । मुझे भी अल्लाह की रज़ा और आखिरत की कामयाबी के सिवा कुछ नहीं चाहिए ।”

आपा ! मेरा यह हौसला देखकर वह इतना खुश हुए कि मैं क्या बताऊँ ।

वे हाथ उठाकर दुआ माँगते रहे । मेरा खयाल है कि दुआ मेरे ही हक में थी । फिर कहा, “मुसलमान औरत को ऐसा ही होना चाहिए ।” इसके जवाब में मैंने भी यही वाक्य थूँ दोहराया— “और मुसलमान मर्द को भी ऐसा ही होना चाहिए ।” इसके बाद मैंने कहा, “जरा ठहरिएगा ।”

मैं जाकर अपना वह बक्स उठा लाई जिसमें मैंने उनकी, “अतिरिक्त मेहनत का फल” इकट्ठा कर रखा था । पूछा— “यह क्या है ?” तो मैंने कहा— “इस बक्स में वह सांप-बिच्छू बंद हैं, जिनसे आप काँप रहे हैं, लीजिए और इन सबका काम तमाम कीजिए । मैंने इसी दिन के लिए इन सबको रख छोड़ा था । अल्लाह का शुक्र है, मैंने इसमें का एक पैसा भी न अपने ऊपर खर्च किया, न रज़िया को कुछ दिया और न ही इससे खाना-पीना मँगाकर रगों में हराम खून पैदा होने दिया ।”

“ऐं, वाकई !” उनकी ज़बान से निकला और उनका मुँह खुले का खुला रह गया ।

“कमाल किया बुशरा, तुमने ! अरे तुम तो फ़रिश्ता निकलीं फ़रिश्ता ! वाकई तुमने वह काम किया जो बड़े-बड़ों से भी न होगा । देखूँ ज़रा !” यह कह कर उन्होंने मेरा माथा चूमना चाहा, मैंने कहा— “अच्छा, बस रहने दीजिए, बहुत शाबाशी मिल चुकी ।”

बक्स खोला गया । हज़ार से ऊपर रक़म थी । राय-मश्विरा होने लगा कि इसको क्या किया जाए । देर तक सोच-विचार करने के बाद तय पाया कि जिससे जो लिया है, उसे वापिस कर दिया जाए जो याद न आए उसका पैसा गरीबों में बाँट दिया जाए । लेकिन यह छिपा कर किया जाए, अपना नाम ऊँचा करने के लिए नहीं, बल्कि अल्लाह की रज़ा व खुशी के लिए ।

अब कुछ और इंतज़ार करना मेरे बस से बाहर था और यही हाल उन का भी था । नोटों को जेब में भर कर उठे, घर से निकल गए । बड़ी देर के बाद जब वापस आए तो मैंने देखा कि उनका चेहरा खुशी से दमक रहा था ।

यह पहला इंक़िलाब हुआ है उनमें । यह आप की तीन-चार महीनों की मेहनत का नतीजा निकला । अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है जिसने उन्हें यह तौफ़ीक़ दी । आगे जो कुछ होगा, फिर लिखती रहूँगी । भाई जान को भी इस घटना की इत्तिला दे दीजिए, वे भी बहुत खुश होंगे । सलमा को प्यार ।

वस्सलाम

आपकी
—बुशरा

आठवाँ खत

आपा ! मेरा और उनका सलाम क़बूल कीजिए और भाई जान से भी कह दीजिए । इस बार आपके खत के साथ भाई जान का खत 'इन' के नाम भी आया । दोनों खतों में लगभग एक ही तरह की बातें थीं । रिश्वत से परहेज़ करने की मुबारकबाद देने के बाद भाई जान ने 'इन' की बड़ी हौसला अफ़जाई की है । भाई जान का खत पाकर 'वे' बहुत खुश हुए । कई बार पढ़ चुके हैं । शायद जवाब भी लिख दिया है । भाई जान से पूछिएगा, मेरा खयाल है कि बड़े जज़्बात का इज़हार किया होगा । अल्लाह उन्हें दीन पर ज़म जाने की ताक़त दे । आजकल बड़े जोश में हैं ।

आपने भी लिखा है और मैं भी इस फ़िक्र में हूँ कि ज़्यादा जोशो ख़रोश अच्छा नहीं होता । हर बात में सन्तुलन अच्छा होता है । मगर मैं इस समय कुछ छेड़ना नहीं चाहती । आपके कहने के मुताबिक़ जोश अधिक दिनों तक बाक़ी नहीं रहता । वे अपने-आप संतुलित हो जाएँगे । इस बार के खत में आपने घरेलू ज़िन्दगी के बारे में जो नसीहतें की हैं, उनसे मुझे आप की पढ़ाई हुई बातों की याद ताज़ा हो गई । अल्लाह का शुक्र है, मैं उनपर पूरी तरह अमल कर रही हूँ ।

हाँ ! आप का यह खयाल ठीक है कि कचहरी के दूसरे कर्मचारी अब उनसे भड़केंगे । वह मिलीभगत अब कैसे चल सकती है ? खरा आदमी अपनी आन-बान अलग ही रखता है । नाज़िर तो उनसे नफ़रत करने लगा है । क्योंकि उनके रिश्वत न लेने से लगभग सारे कर्मचारियों की ऊपरी आमदनी पर कुछ-न-कुछ चोट पड़ती है, इसलिए मतभेद होने की आशंका है । एक दिन खुद भी परेशान थे और कह रहे थे कि उन सबका साथ अब कैसे निभ सकेगा ।

'जी हुज़ूर', 'ग़रीब परवर', 'अन्नदाता' तो कर्मचारियों का तक़िया-ए-कलाम होता है । फिर अगर हाकिम बारह बजे दिन को कहे— 'चाँद निकला है' तो मातहत लोग तारे गिनने लगते हैं । मेरा विचार है कि नौकरी वैसे भी कोई अच्छा काम नहीं, और फिर इस ज़माने में जब कि कोई भी विभाग रिश्वत, झूठ, चापलूसी और अनुचित दबाव, छल-कपट, से ख़ाली नहीं, कौन अधिकारी ऐसा है जिसके दिल में खुदा का डर हो । खुदा का डर तो बड़ी बात है, मैं तो कहती हूँ कि हर एक खुद खुदा बना बैठा है और अपने अधीन लोगों पर पद के मुताबिक़ शासन कर रहा है । अख़तर साहब से तो उनकी एक आन न निभेगी, लेकिन मैं कहूँगी नहीं । मज़ा तो जब है, जब वे खुद महसूस करें, और खुदा ने चाहा तो महसूस

ज्रूर करेंगे । भला उनसे यह खटरागू कब बरदाशत होगा । जुमे के दिन कह रहे थे कि तहसीलदार से नमाज के लिए झड़प हो गई । उनकी नमाज जा रही थी और वहाँ मुक़द्दमा पेश था, जब समय बिल्कुल ही तंग हो गया, तो हज़रत उठकर चले आए । तहसीलदार ने मुक़द्दमा रोक दिया । मगर उनका कहना है “बहुत बुरा लगा उसको” बहुत जल्द कोई-न-कोई इलज़ाम उनपर धरा जाएगा और उन्हें या तो बर्खास्त कर दिया जाएगा या उनसे इस्तीफ़ा ले लिया जाएगा । खैर अच्छा है, किसी तरह उनकी ये बेड़ियाँ कटें । अल्लाह रोज़ी देनेवाला है । एक रास्ता बन्द होता है, तो अल्लाह दूसरा रास्ता खोल देता है और मेरा तो यही ईमान है ।

आप-अभी से मशविरा दें कि नौकरी से हटने के बाद रोज़ी का कौन-सा साधन उचित होगा । भाई जान से मशविरा कीजिएगा । भाई जान एक इस्लामी मैगज़ीन निकालना चाहते थे, लेकिन हम-खयाल सहयोगी न मिलने के कारण हाथ-पैर बाँधे बैठे हैं । मैं सोचती हूँ कि मज़दूरी तो उनसे होगी नहीं और हुनर भी कोई हाथ में नहीं है । कुछ लिखने-पढ़ने का काम होता तो अच्छा था, वरना जैसा वे करेंगे और मुझे रखेंगे उस पर आप मुझे हर हाल में खुश पाएंगी । हमारे लिए बराबर दुआ करती रहिएगा । मेरा यह ख़त भाई जान को भी दिखा दीजिएगा । सलमा को प्यार

वस्सलाम

आपकी बहन
—बुशरा

नौवाँ खत

लंजिए आपा जान ! हमारा सलाम कबूल कीजिए और अब हमारे लिए दिलोजान से दुआओं पर दुआएँ कीजिए । आजमाइश की घड़ी आ गई । इतवार को 'वे' और उनके मामूँ जान साथ-साथ आए, लेकिन दोनों गुम-सुम ! साफ़ मालूम होता था कि किसी बात पर आपस में खिंचाव है । मैं घबरा गई कि अल्लाह जाने क्या बात है । इससे पहले जब कभी मामूँ-भांजे आते तो हँसते-मुस्कराते हुए आते । आज कुछ दाल में काला नज़र आता था । मैंने तुरन्त मेज़-कुर्सी लगा दी, दोनों बैठ गए । मैं चाय बनाने लगी । अब भी दोनों चुपचाप अपने-अपने विचारों में डूबे हुए थे । मामूँ जान ने बस इतना किया कि कुछ केले और सेव लाए थे, रज़िया को बुलाया, उसे दे दिए और गोद में बिठा लिया । वे रज़िया से भी कुछ न बोले । रज़िया थोड़ी देर में उकता कर मेरे पास चली आई ।

मैंने चाय लाकर रखी और प्यालियों में उंडेलने लगी, तो मामूँ जान ने कहा, "मेरे लिए मत बनाना, मैं नहीं पिऊँगा ।" मैं मुँह देखती रह गई, आखिर मैंने हिम्मत करके पूछा, "मामूँ जान ! यह आज आप दोनों साहब चुप-चुप क्यों हैं, खैरियत तो है ?" मामूँ भरे बैठे ही थे, मेरे इतना कहने पर उबल पड़े, बोले— "बेटी ! चुप क्यों न रहूँ, साहबजादे को देखिए, बाप का इंतिकाल हो गया, माँ भी चल बसी । मैंने पढ़ाया-लिखाया, पाला-पोसा, हर जाएज़-नाजाएज़ खर्च बर्दाश्त किया, हमेशा आँख का तारा बनाए रखा । बहन की यादगार को कलेजे से लगाए रखा, नौकरी लगवाई, शादी-ब्याह किया । अब जब साहबजादे इस काबिल हुए कि कुछ काम आएँ तो देखो क्या हालत है, मुँह फुलाए बैठे हैं । मुझ पर वक्त पड़ा है, इन्हीं के यहाँ मेरा मुक़द्दमा है । मैं कहता हूँ, ज़रा यूँ से यूँ कर दो तो फ़रमाते हैं, "यह सब फ़रेब है, झूठ है ।" आज तक न जाने कितने झूठ बोल चुके हैं । अब आज चले हैं बड़े सच्चे बनने । मामूँ की गरदन पर झुरी फेर रहे हैं । कैसा ज़माना आ गया है । बेटी ! तुम समझदार हो, ज़रा इन्हें समझाओ, मुझ से तो साफ़ इनकार कर दिया है । अल्लाहवाले बनने का दावा फ़रमाते हैं, जनाब । वही कहावत है— 'नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज़ को चली ।' बेटी ! इनको बचपन में भी आधी बात नहीं कही मैंने । मगर दुनिया सुनेगी तो ज़रूर कहेगी कि मामूँ के साथ बुरा सलूक किया है । बच्चा-बच्चा मुँह पर थूकेगा ।"

मामूँ जान जोश में यह सब कुछ कह गए । मैंने बीच में टोक कर पूछा— "आखिर बात क्या है ?" मेरे इतना कहने पर रज़िया के भाई जान तड़प कर बोले, "बात यह है कि चीनी की बोरियाँ ग़लत तरीके से ये दूसरे ज़िले को भेज रहे थे । पकड़े

गए हैं, तो कहते हैं कि सबूत गायब कर दो । चन्द टकों का मुक़सान ग़वार नहीं । मुझसे फ़रेब कराना चाहते हैं । मेरी मार्फ़त तहसीलदार को रिश्वत दिलाना चाहते हैं, झूठ बुलवाना चाहते हैं । मैं कहता हूँ, माना यहाँ सब से छिप कर झूठ और फ़रेब से कामयाब हो गए तो क्या हुआ आखिर एक दिन अल्लाह को भी तो मुँह दिखाना है । बस मेरी इतनी-सी बात पर यह सारा गुस्सा है । चाहिए तो यह था कि मैंने अल्लाह की ओर क़दम बढ़ाया था, तो मेरे बुजुर्ग होने के नाते मेरा हौसला बढ़ाते, लेकिन उलटे नाराज़ हो रहे हैं ।

आपा ! दोनों ओर बराबर आग लगी देखकर मुझको पसीना आ गया । मामूँ जान तो ख़ैर “अगले वक्तों के हैं ये लोग, इन्हें क्या कहिए” मगर ज़रा उन हज़रत को देखिए, आखिरत का डर सवार हुआ तो जैसे दिमागी संतुलन भी बिगड़ गया । आखिर बात तो भले तरीक़े से कही जाती है, या थूँ तोप के गोले फेंके जाते हैं । इसी का मुझे डर था । अब बताइए क्या हो ? ख़ैर, मैंने उस दिन तो किसी तरह टाल दिया । अब नाना जान ने एक साहब से ज़बानी कहलवाया है, लेकिन “ये” अपनी ज़िद पर अड़े हैं । हालाँकि मैं इन्हीं की बात को सही समझती हूँ, मगर यह तेवर ख़तरनाक हैं । अल्लाह की रज़ा और आखिरत के डर का यह मतलब नहीं कि सारी दुनिया से लड़ाई मोल ले ली जाए । इसी बात को ज़रा नरमी और अच्छे ढँग से कहते तो मामला हल हो सकता था । मगर मामला तूल पकड़ गया । अब हल कैसे हो । अगले सप्ताह पेशी है । मामूँ जान इस पर अड़े हैं कि मुक़द्दमे का फ़ैसला उनके मुवाफ़िक़ न हुआ, तो हमेशा के लिए नातेदारी ख़त्म । पास-पड़ोस और बस्ती में कानाफूसी शुरू हो गई है । ज़्यादातर लोग मामूँ जान की तरफ़ ही बोलते हैं, आवे का आवा ही बिगड़ा हुआ है । तक्रवा व परहेज़गारी भला इस माहौल में कैसे चल सकेगी । अगर मैं इस मौक़े पर समझाती हूँ कि अपना रुख़ ज़रा नरम करो । दीन की बात कहने का भी एक ढँग होता है । सामने वाले व्यक्ति के मिज़ाज की रियायत की जाती है, तो वे मानेंगे नहीं । बहरहाल मैं सख़्त उलझन में हूँ । आज मैंने पूछा तो कहा कि “मैं एक हफ़्ते की छुट्टी ले लूँगा । पेशी के दिन जाऊँगा ही नहीं । मेरी ग़ैर-हाजिरी में जो होना है, हो जाएगा ।” अब देखिए ऊँट किस करवट बैठा है । मामूँ जान से बिगाड़ मोल लेने से जो कुछ होगा, वह मेरे सामने है । अल्लाह ख़ैर करे ।

अगर उन्होंने छुट्टी ले ली तो मैं राय दूँगी कि चलो आपा के यहाँ दो-चार दिन के लिए हो आएँ । भाई जान से सारा हाल कह दीजिएगा । सलमा को दुआ ।

मुसीबतों में फँसी आपकी—बुशारा

दसवाँ खत

अच्छी आपा ! अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुह !!

आप के यहाँ से आए हुए एक सप्ताह हो गया । आप के यहाँ जाना हमारे लिए बहुत फ़ायदेमंद साबित हुआ । भाई जान की संगत में 'वे' बहुत कुछ सीख कर वापस हुए । अब वह तेज़ी और तर्रारी नहीं रही । कहते हैं कि "भाई साहब बड़ी सूझ-बूझ के आदमी हैं और आपा जान भी अत्यन्त दूरदर्शी और अक्लमंद औरत हैं । उन दोनों की संगत बड़ी अच्छी है । छः-सात ही दिनों के अन्दर मैंने बहुत कुछ हासिल किया है । किसी ने कितनी अच्छी बात कही है कि भले लोगों के साथ चन्द दिन की संगत वर्षों की किताबी तालीम से हजार गुना बेहतर है ।"

मैं देखती हूँ कि वह जिस तरफ़ भी झुकते हैं, बस सीमा पार कर जाते हैं । शायद अब यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि वह एक इंतहा-पसंद आदमी हैं । लेकिन उम्मीद है कि अब कुछ धीरे-धीरे मामले को समझने लगेंगे । भाई जान ने जो किताबें दी हैं, वे सब बहुत अच्छी और चुर्नीदा किताबें हैं । प्रतिदिन मुझे पढ़कर सुनाते हैं, समझाते हैं । मतलब यह कि दर्स देते हैं । कल कह रहे थे कि "यह उर्दू और अंग्रेज़ी के पोथे-के-पोथे पढ़ता चला जा रहा हूँ, मगर वह ज़हन नहीं बनता जो भाई जान का है, सोचता हूँ, उम्मुल किताब (कुरआन मजीद) ही की स्टडी क्यों न करूँ ।"

'स्टडी' का मतलब पूछने पर पता चला कि वे अरबी ज़बान सीख कर उसी के ज़रिए कुरआन करीम समझना चाहते हैं । कितना मुबारक है यह विचार । आदमी धुन के पक्के हैं । उम्मीद तो है, वे कामयाब होंगे । कहते थे, कोई ऐसा अरबी जाननेवाला मिल जाए जो नई शिक्षा-पद्धति से परिचित हो तो बेहतर है, वरना 'फ़अ-ल, फ़-अ-ला, फ़अलू' कौन रटेगा ।

यह तो हुई उनकी बात । अब सुनिए मामूँ का क़िस्सा । उन्होंने जब सुना कि अख़्तर ने छुट्टी ले ली है, तो उनकी बन आई । सुना है कि उनकी जगह पर काम करने वाले पेशकार से तीन सौ रुपये में सौदा तय हो गया, अल्लाह जाने । बहरहाल, मामूँ जान को इस तरकीब से कोई फ़ायदा नहीं हुआ । मामूँजान और नानाजान ने कहला भेजा है कि बस देख लिया । अब कभी तुम्हारे घर की ओर मुँह भी न करेंगे ।

इसके बाद हमारे मुहल्लेवालों को भी उन लोगों ने भड़का दिया । परसों से रोज़ ही मकान में डेले आते हैं । तीन घड़े एक दिन टूटे, खिड़की का शीशा चूर-चूर हो गया । वह तो कहिए जाड़ा है अभी हम लोग सेहन में नहीं सोते हैं, वरना

चोट खाने से न बचते । फिर कुछ ऐसा हुआ कि मुहल्लेवालों को एक मौका हाथ आ गया । वह जो “दाता मियाँ” का मजार है न ! इस बार बड़ी धूमधाम से उनका उर्स मनाया गया । कलकत्ते से कालू कच्चा को बुलाया गया, लखनऊ से ज़ोहरा जान तवायफ़ आई । उसके लिए अज़्तर साहब से भी चन्दा माँगा गया तो उन्होंने कानों पर हाथ रख लिए । लोगों ने बहुत कहा-सुना, मगर वे घर से ही न निकले । बस फिर क्या था । मामूँ ने ज़रा शह दी और मुहल्ले के सारे लोग हमारे ऊपर टूट पड़े । वह तो कहिए कि मैं दरवाज़ा हमेशा बन्द रखती हूँ, बरना बेपरदगी भी होती और सामान का भी सत्यानाश हो जाता । सभी बाहर ही खड़े ‘वहाबी’, ‘कंजूस’ और इसी तरह के खि़ताबों की बौछार करते रहे ।

आप के यहाँ से आने के बाद अब ‘वे’ बड़ी हद तक संतुलित हो गए हैं । जब मुहल्लेवाले बुरा-भला कह रहे थे, वे चुपचाप अन्दर कमरे में लेटे रहे और कह रहे थे— “बकने दो सबको ।” मेरा दिल धक-धक कर रहा था, रज़िया बेचारी एक ओर सहमी हुई खड़ी थी । पूछती थी— “ये सब लोग गालियाँ क्यों दे रहे हैं ?” एक घंटे के बाद ये बादल छटे । सोने के लिए अभी अपनी-अपनी चारपाई पर लेटे ही थे कि किसी ने दरवाज़ा खटखटाया । हम सब चौंके । वे चले देखने । मैंने मना किया । बोले— “खोलूँगा नहीं, देखता हूँ कौन है ?” किवाड़ के पास जाकर पूछा, “कौन है ?” आवाज़ आई— “हम हैं, रहमतुल्लाह और आबिद ख़ाँ ?” पूछा— “क्या बात है ?” कहने लगे— “किवाड़ खोलिए, अन्दर आकर बताएँगे ।”

किवाड़ खोल दिए गए और वे दोनों अन्दर आ गए । मैं परदे में थी, उनमें से एक ने कहा, “मालूम हुआ कि आज यहाँ कोई चोरी या डाका, कुछ न कुछ घटना घटने वाली है । हमने चुपके से कोतवाली खबर कर दी है । इरादा है कि हम घर में छत के ऊपर रहें और आप सबकी हिफ़ाज़त करें ।”

शुक्रिए के साथ उनका कहना मान लिया गया । मैंने उन दोनों के बारे में पूछा तो बताया कि ये दोनों बेचारे उन लोगों में से हैं, जिनको मैंने अपनी रिश्वत से तौबा के बाद काम-काजी समझकर तीन-तीन सौ रुपये दे दिए थे । अब ये उसी से अच्छा ख़ासा कमा लेते हैं और बाल-बच्चों का पेट पालते हैं ।

हम सब चौकन्ना हो ही गए थे, रात भर जागते रहे । लेकिन पिछले पहर आँख लग ही गई । अभी अच्छी तरह सोए न थे कि वे एक दम चौंक कर जागे । मेरी भी आँख खुल गई और रज़िया भी जाग उठी । मालूम हुआ कि रहमतुल्लाह और आबिद ख़ाँ ने मुज़फ़्फ़र और जंगी ख़ाँ को पकड़ रखा है । वे दोनों मिन्नतें कर रहे हैं । मैंने उठकर रज़िया के भाई जान से कहा, “मेरा ख़याल है कि यह

दोनों चोर या डाकू नहीं हैं। किसी ने लालच देकर बहका दिया है, उन्हें माफ़ कर दीजिए। अल्लाह मालिक है। इन्हें कोतवाली न ले जाया जाए।”

मेरा यह इशारा पाकर दोनों को छोड़ दिया गया। दोनों ने बहुत एहसान माना। कहने लगे— “हम तो आप की जान लेने आए थे, मगर अब तो हम आपके बेदामों गुलाम हैं। आपका बड़ा एहसान है। अल्लाह ने चाहा तो वक़्त आने पर ख़िदमत कर गुज़रेंगे।”

ख़ैर, जैसे-तैसे रात आँखों में कटी। दूसरा दिन हुआ। खयाल था कि शायद मुहल्ले वाले कुछ डींग मारें मगर रज़िया के भाई जान मस्जिद भी गए, सौदा-सुलफ़ भी लाए, किसी ने टोका तक नहीं। हम लोगों ने खयाल किया कि शायद आबिद ख़ाँ और रहमतुल्ला या जंगी ख़ाँ और मुज़फ़्फ़र ने कुछ धौंस दे दी होगी।

आपा ! यह मामला तो ख़ैर टल गया। अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है। अब आगे देखिए क्या होता है। उन्होंने तो यह किया है कि उन चारों दोस्तों को अब रोज़ अपने कमरे में बुलाते हैं और अपनी पसंदीदा किताबों में से कुछ उन्हें सुनाते और समझाते हैं। तौहीद और तौहीद के तक्काज़ों पर बड़ा ज़ोर देते हैं। उम्मीद है कि ये चारों भी दीन की कुछ न कुछ बातें समझ जाएँगे। अम्र और मग़रिब के बीच मदरसा इस्लामिया में जाकर मौलाना से आधा घंटा अरबी पढ़ते हैं। आप भी दुआ करती रहें।

घर में सब को सलाम व दुआ कह दीजिएगा।

वस्सलाम

आपकी
—बुशारा

ग्यारहवाँ खत

आपा जान ! अस्सलामु अलैकुम !!

आजकल 'वे' अरबी पढ़ने में तन-मन से लगे हुए हैं। मौलाना बड़ी मुहब्बत और मेहनत से पढ़ाते हैं और दीन की बातों पर बहस भी इस खूबी के साथ करते हैं कि अख्तर साहब के अन्दर की सलाहियत धीरे-धीरे सामने आ रही है। कुछ तो आप के यहाँ की किताबों ने उभार ही दिया था, मगर अब तो बहुत ही अच्छी तर्बियत हो रही है। सबसे ज्यादा जिस बात से सुधार हो रहा है, वह मुहल्ले वालों के एतराज हैं। दाता मिथों के उर्स में नाच और गाने का विरोध करके जो चन्दा नहीं दिया तो अब जिसे देखिए, वह कोई न कोई एतराज उलटा सीधा करता ही रहता है। मेरे सामने अक्सर जिक्र आता है। अब मैंने भी कुछ-कुछ अपनी राय ज़ाहिर करना शुरू कर दिया है। एक दिन 'वे' मुहल्ले वालों की शिकायत कर रहे थे कि अजीब लोग हैं, जब मैं दुनिया की हर खुराफ़ात में हिस्सा लेता था तो किसी से न हुआ कि मुझे टोकता और मना करता। अगर दिन में सौ झूठ भी बोला तो किसी के कान पर जूँ तक न रेंगी। हफ़्ते में दो-दो दिन पाबन्दी से सिनेमा का प्रोग्राम रहा, पर किसी की ज़बान से एक बोल भी न फूटा। रिश्वत ले लेकर हराम कमाई हासिल करता रहा, किसी ने हिम्मत न की कि ज़बान हिला देता। आज जबकि मैं इस्लामी शिक्षाओं के सांचे में अपने को ढालने की कोशिश कर रहा हूँ, तो चारों ओर से सभी पिल पड़े हैं, जिसे अलिफ़ के नाम लठ नहीं आता वह भी एक न एक एतराज कर रहा है। कोई कहता है— “बड़े मौलवी बने हैं, अब तक जो कुछ सारे मुसलमान करते चले आ रहे हैं, उसे ग़लत समझ कर अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग बना रहे हैं।” कोई कहता है “क्या बाप-दादा सभी बेवकूफ़ थे ? क्या इस्लामी किताबें पहले नहीं थीं, क्या पहले पढ़े-लिखे लोग न थे। किसी ने आज तक शादी-ब्याह की रस्मों को मना न किया, अक्कीके और ख़तने की धूम-धाम को न रोका, अब ये कहाँ से आए हैं नए मौलवी बन के।” कोई कहता है— “नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज़ को चली।” कोई कहता है— “अच्छा यह सब सही, लेकिन क्या दाढ़ी मुड़ाना हराम नहीं ? क्या कोट-पतलून और हैट पहनना जाएज है ? क्या ताश खेलना शरअन जाएज है ?” वग़ैरह-वग़ैरह। कहने का मतलब यह कि जितने मुँह उतनी बातें।

अपने प्यारे शौहर को इन बौछारों में घिरा देखकर एक दिन मैंने हिम्मत की और साहस करके एक छोटा-सा भाषण दे ही डाला। मैंने कहा— “असल में

यही वह मक़ाम है, जहाँ आकर या तो इंसान फेल हो जाता है या फिर उसी ओर पलट जाता है जहाँ से चला था । बल्कि फेल होने पर उस जगह पर भी क़ायम नहीं रहता और नीची से नीची जगह जा पहुँचता है, या फिर लोगों के ताने ठंडे दिल से बरदाश्त कर लेता है । बल्कि इससे भी आगे वह यह देखता है कि उनमें कहाँ तक सच्चाई है, इसके बाद अपने में जो बुराई पाता है उसे दूर करता रहता है । इस तरह यही हंसी उड़ाने वाला माहौल खुद सुधार का ज़रिया बन जाता है और मार-मार कर बची-खुची ख़ामियों को दूर कर देता है । ढूँढ-ढूँढ कर एक-एक ऐब की निशानदेही करता है । नसीहत करने वाला मेहरबान न सही, मगर उस दोस्त से तो अच्छा है, जो खूबियाँ और अच्छाइयाँ बता-बता कर नफ़्स को मोटा कर देता है ।

असल में यह तो अल्लाह की ओर से तरबियत का बेहतरीन ज़रिया होता है । अल्लाह अपने फ़रमाबंदार बन्दों की ख़ामियों को इसी तरह दूर करता है । अगर इंसान संजीदगी से उसे झेल ले जाए, तो इस भट्टी से निकल कर खरा सोना हो जाता है । तमाम नबियों को भी तो सताया गया, सहाबा-ए-किराम (रज़ि०), औलिया-ए-किराम (रह०) सब इसी आजमाइश की भट्टी में तपाए गए और जब वे पारस हो गए, तो फिर उन्हीं से इस्लाम को वह ताक़त मिली जो बड़ी-बड़ी सेनाओं से न मिली । अतः ऐसे सख़्त माहौल को अल्लाह की रहमत समझना चाहिए, जो बे-पैसे-कौड़ी हमारे अक़ीदों का चलता-फिरता इश्तिहार है । हमारे ऐबों से हमें ख़बरदार कर रहा है । अब यह हमारा काम है कि हम आगे बढ़ें या घबरा कर पीछे हट जाएँ । किसी शायर ने कितना अच्छा कहा है—

नागवारा को जो करता है गवारा इंसों ।

ज़हर पीकर मज़ा-ए-शीरो शकर लेता है ॥

मेरा यह भाषण उन्होंने ग़ौर से सुना । बहुत मुतास्सिर हुए । मुस्कुराए, फिर हैरत से कहने लगे— “ऐ बीमुल्लानी जी ! तुममें ये सारे जौहर भरे पड़े हैं । मैंने तुम्हारी क़द्र ही न जानी । तुम्हारी ही वजह से मैं जरा दबकता था । अब जब तुम्हीं हौसला बढ़ा रही हो तो इशाल्लाह क़दम पीछे हटते न देखोगी । वास्तव में जैसा लोग कहते हैं, मुझ में कुछ ख़ामियाँ भी हैं । जैसे यही कि मेरे चेहरे पर दाढ़ी नहीं है, मैं एतराज की बौछार पर झल्ला उठता हूँ, अपने क़रीबी रिश्तेदारों को जो मुझ से किसी वजह से नाराज़ हैं, अभी तक मना नहीं सका । इसी तरह मैं जब से इस्लामी उद्देश्यों और तकाज़ों को समझने लगा हूँ, ज़रा फ़ख़-सा महसूस करने लगा हूँ और खुद मुसलमानों को अच्छी निगाह से नहीं देखता । अल्लाह ने चाहा तो अब मैं इसी वक़्त से अपना रवैया बदल दूँगा । छोटा-बड़ा, अमीर-ग़रीब,

पढ़ा और अनपढ़, सबसे बराबरी का बरताव करूँगा, जहाँ तक मुमकिन हुआ पहले सलाम करूँगा, जैसे भी हो सकेगा, अल्लाह की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए रिश्तेदारों को भी मनाऊँगा, और सुनती हो बुशरा ! सोच रहा हूँ कि अब दाढ़ी भी.....”

आखिरी जुमला उन्होंने पूरा नहीं किया, अपने गालों पर हाथ फेरा, कहने लगे—
“ला हौ-ल वला कु-व्वत ! किस क्रूर खुरचा है उनकी खाल को । ‘खुरचने’ के शब्द पर मैं जरा मुस्कराई, वे भी मुस्करा दिए ।

एक सप्ताह हुआ है, दाढ़ी में उस्तरा नहीं लगा, खूब भरी-भरी है उनकी दाढ़ी, मुझे तो बड़ी खूबसूरत लगती है । लालिमा लिए हुए सफेद चेहरे पर काली दाढ़ी बड़ी प्यारी लगती है । कल इतवार को मौलाना की दावत थी । उन्होंने भी सुबहानल्लाह कहा । आपा ! देखा आपने ! सच यह है कि जब तक आदमी अमल के मैदान में न उतरे, उसमें जमाव नहीं आता । आप तो यह दुआ करें कि अल्लाह हमें दीन पर जमने की ताकत दे । रज़िया कायदे की किताब खत्म करके रीडर शुरू कर चुकी है । यहाँ सब लोग, वहाँ सब लोगों को सलाम कहते हैं ।

वस्सलाम

—बुशरा

बारहवाँ खत

आपा जान !

अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह व बरकातुहु!!

अबकी बार आपके खत का इंतज़ार ही रहा । लेकिन भाई जान ने अपने साढ़ू भाई के पास जो खत भेजा उसने गोया आपके खत की जगह ले ली । उसी खत से पता चला कि अख़्तर साहब यहाँ नौकरी छोड़ने का इरादा कर रहे हैं । शायद भाई जान को उन्होंने लिखा हो, उसी का जवाब आया है । मुझे दिखा रहे थे और कह रहे थे कि भाई साहब ने कोई मशविरा नहीं दिया । गोल-मोल-सी बात कह दी । लिखा है— “भाई नौकरी छोड़ने के बारे में मैं क्या बताऊँ, या तो इधर से एकसू होना है या उधर । हाँ ! अपना दिल टटोल कर देखो, वह क्या कहता है । ऐसा न हो कि नौकरी छोड़ने के बाद कोई परेशानी हो और उसका सामना न कर सको तो फिर बड़ा बुरा असर पड़ेगा । इसमें कोई दूसरा क्या राय दे सकता है ?”

भाई जान की यह बात है तो दूरदर्शिता पर आधारित, मगर इससे उन्हें तसल्ली नहीं हुई । वे नौकरी से ऊब चुके हैं; कहते हैं— “जबसे रिश्तत लेना बन्द किया है, तब से पूरा स्टाफ़ मुख़ालिफ़ हो गया है । वजह जाहिर है, सबको लिहाज़ करना ही पड़ता है । वह तो कहिए अल्लाह हिफ़ाज़त करनेवाला और बचानेवाला है, वरना अब तक ज़िल्लत के साथ बरखास्त हो जाते । एक मामला तो ऐसा गुज़र चुका है कि यार लोगों ने बिल्कुल फ़ौस ही दिया था । मगर चूँकि सारी घटना डिप्टी कमिश्नर के इल्म में थी इसलिए कुछ नहीं हुआ । तहसीलदार तक ने विरोध में रिपोर्ट दी थी । उससे बरी होने के बाद अब उन्हें अदालत में जाना गवारा नहीं । कहते हैं कि बहुत से मुक़द्दमों में ग़लत फ़ैसले हो जाते हैं । दिल पर बड़ा सदमा होता है । कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूँ, जब से दाढ़ी रख ली है, तब से मानो भिड़ों के छत्ते को छेड़ दिया है । लुत्फ़ यह है कि कहते सब यही हैं कि यही सब वास्तव में अख़्तर साहब में जो इंक़िलाब आया है, बहुत अच्छा है, मगर आजकल की दुनिया में निभ नहीं सकता । अफ़सोस तो यह है कि मुसलमान क्लर्क मुख़ालिफ़त में कुछ ज़्यादा ही पेश-पेश हैं । हिन्दू तो फिर भी कुछ रियायत कर जाते हैं । शायद मुसलमान क्लर्कों को पेशकार के आईने में अपनी वही सूत दिखाई दे रही है जो वे हैं ।

मेरे सामने जब उन्होंने यह सारा रोना-रोया तो मैंने साफ़ कह दिया— “मारिए

गोली नौकरी को, अल्लाह रोजी देनेवाला है । वह ऐसे तरीके से रोजी भेजेगा जो इंसान के वहमो-गुमान में भी नहीं आ सकता । न सही ज्यादा सफ़ेदपोशी, लेकिन बुनियादी जरूरतें बहरहाल पूरी होंगी । जो लोग नौकरी नहीं करते, क्या उनका गुज़र बसर नहीं होता ?”

रज़िया के भाई जान एक ओर मेरी बातें सुनते हैं तो कुछ हिम्मत बंधती है । मुझ से कह देते हैं कि बस, अब इस्तीफ़ा दे दूंगा, लेकिन जब घर से निकलते हैं और यार-दोस्तों से मशविरा करते हैं तो फिर इरादा कमजोर पड़ जाता है । मैं सोचती हूँ कि मौलाना को चाय पर बुलाऊँ और उनसे मशविरा किया जाए । उम्मीद तो है कि वे अवश्य कोई न कोई ऐसी ठोस बात बताएँगे, जिससे अख़्तर साहब यकसू हो सकें ।

हाँ ! यह ज़रूरी है कि आप और भाई जान आगे के लिए हमारे वास्ते कोई प्रोग्राम अवश्य बताएँ । आख़िर एक दिन यह तो होना ही है । अगर “वे” नौकरी न छोड़ेंगे तो इंशाल्लाह नौकरी उन्हें छोड़ देगी । क्या तब आप लोग राय देंगे ? आख़िर हम लोग और किससे मशविरा करने जाएँ ? आबिद ख़ाँ और रहमतुल्लाह कहते हैं कि “हमारी दुकान हाज़िर है । यह सब आप ही की जूतियों की देन है, जिस तरह जी चाहे दुकानदारी कीजिए । हम को गुलाम समझिए ।”

आबिद ख़ाँ और रहमतुल्लाह साहब का उन्होंने शुक्रिया अदा किया । ग़ैरतमँद तबीअत के आदमी से यह हो भी कब सकता है ? मेरी समझ में कुछ रायें आईं और मैंने उनके सामने पेश भी कर दीं । एक राय यह है कि भाई जान और ‘वे’ मिलकर एक पत्रिका जारी करें जिसका मक़सद इस्लाम का सही प्रचार हो । भाई जान एक लम्बे समय से ऐसा सोच भी रहे हैं ।

दूसरी राय यह है कि मैं अपना ज़ेवर बेच डालूँ, कुछ रक़म तो इकट्ठा हो ही जाएगी । यह रक़म दुकानदारी में लगाई जाए, लेकिन वे इस पर राज़ी नहीं हैं ।

मेरी तीसरी राय यह है कि नूरपुर को छोड़ कर लखनऊ जा बसें और जब तक कोई मुनासिब काम नज़र न आए, ट्यूशन करें । नूरपुर छोड़ने को वे तैयार नहीं..... कहते हैं— “हम सब पर सबसे पहले नूरपुर का हक़ है । हमको चाहिए कि दीन की तब्लीग़ यहीं जम कर करें ।”

मेरी सारी रायें और मशविरें उनके लिए नाक़ाबिले क़बूल हैं । किन्तु वे यह नहीं बताते कि फिर क्या करेंगे । कोई योजना चूँकि उनके ज़हन में नहीं है इसलिए शायद नौकरी से इस्तीफ़ा देते हुए झिझकते हैं, लेकिन हैं अजीब कशमकश में ।

कहते हैं कि कचहरी के अन्दर जाकर कदम रखता हूँ, तो ऐसा मालूम होता है जैसे अंगारों पर पाँव रख दिया है ।

आपा ! यह है हमारे सामने इस वक्त सबसे बड़ी गुत्थी जो सुलझाए नहीं सुलझती । सुलझे भी कैसे ! सब कुछ सही, लेकिन रजिया के भाई जान का जहन है अभी कच्चा । मुझे तो किसी का वह मिस्रा याद आ रहा है—

“जिसने लगाई ऐड़, वह खन्दक के पार था”

बाक़ी सब ख़ैरियत है । अब मेरे घर पर रजिया के अलावा पड़ोस की दो और लड़कियाँ पढ़ने आने लगी हैं और अल्लाह का शुक्र है कि अब हमारा पड़ोस कुछ-कुछ हमसे सहमत होने लगा है । उनके हमदर्दों में भी दो का अज़ाफ़ा और हो गया है । अपनी ख़ैरियत से जल्द आगाह करें ।

वस्सलाम

कशमकश में घिरी आपकी
बुशरा

तेरहवाँ खत

प्यारी आपा ! सलाम मसनून !!

अच्छा आपा ! यह बात थी ? मैं हैरान थी कि आखिर आप और भाई जान नौकरी के छोड़ने और न छोड़ने के बारे में अपनी राय ज़ाहिर क्यों नहीं करते हैं और इसका फ़ैसला रज़िया के भाई जान की मर्ज़ी पर ही क्यों छोड़ दिया है । आप का यह खत मिलने के बाद अब मैं समझी कि भाई जान ने साफ़-साफ़ क्यों नहीं लिखा कि “इस्तीफ़ा दे दो ।” सचमुच हमेशा दूरदर्शिता और सूझबूझ से काम लेते रहना चाहिए । आपका यह विचार सही है कि तरंग में आकर किसी ने कोई क़दम उठा दिया और फिर न निभा सका तो उसका बुरा असर पड़ता है । फिर इंसान उस जगह जम नहीं पाता, जहाँ से वह चला था । रज़िया के भाई जान का यह हाल है कि बात-बात में नौकरी की बुराइयाँ तो करते हैं, मगर अभी तक उसी से चिमटे हैं । एक बार तो मेरे जी में आया कि कह दूँ, “जो ज़्यादा गरजते हैं, वे कम बरसते हैं ।” मगर फिर यह सोचकर चुप रही कि कहीं बात को ताना न समझ लें । मैं इतना खत पूरा कर चुकी थी कि “वे” आ गए । कचहरी के समय से पहले आता देखकर मुझे ताज्जुब हुआ । मैंने खत लिखना बन्द कर दिया । समय से पहले आने की वजह पूछी तो कहने लगे— “मैंने साल भर की छुट्टी ले ली है ।” मैंने फिर पूछा— “क्यों ?” बोले, “इस मुद्दत में हाथ-पैर मार के किस्मत आजमाऊँगा और.....” वे कुछ और कहना चाहते थे कि बात काटते हुए मैंने कहा : “और अगर इस अरसे में सोने की चिड़िया हाथ आ गई तो फिर इस्तीफ़ा वरना फिर वही हम हैं, वही दिन, वही रातें हैं— आप इक़बाल का वह कौन-सा शेर पढ़ा करते हैं ? भला-सा है, एक पंक्ति तो मुझे याद है—

आह ! ये अक़्ले ज़ियाँ अंदेश, क्या चालाक है ।

दूसरी पंक्ति जाने क्या है ? हाँ याद आ गया—

और तअस्सुर आदमी का किस क़दर बेबाक है ॥

इसका मतलब कुछ इस तरह बताया था आपने कि इंसान इस सोच में पड़कर कोई बड़ा क़दम नहीं उठा पाता कि कहीं नुक़सान और घाटा न हो जाए । लेकिन मोमिन यह नहीं सोचता । यही बताया था ना आपने ?”

मैंने उनकी नज़र से नज़र मिलाकर यूँ ही फ़र-फ़र ये जुमले और शेर कह डाले । उन्होंने सुना और कुछ कहना चाहा मगर कह न सके । होंठ कपकपा कर रह गए । पलंग पर जा लेटे । मैं खाना पकाने लगी । मग़रिब से पहले खाना तैयार कर

दिया । फिर उनके पास गई, तो देखा कि वह एक साफ़ और अच्छे-से कागज़ पर अंग्रेज़ी में कुछ लिख रहे हैं । आहट पाकर एक नज़र मुझे देखा और फिर लिखने लगे । लिख चुके तो कागज़ मोड़ कर लिफ़ाफ़े में रखा । मैंने पूछा— “क्या भाई जान को ख़त लिखा है ? मेरा भी सलाम लिख दीजिए ।” कहने लगे— “भाई जान को नहीं, डिप्टी कमिश्नर की सेवा में जा रहा है यह लिफ़ाफ़ा ।” मैंने फिर पूछा, “क्या है इसमें ?” बताया, “इस्तीफ़ा” और लिफ़ाफ़ा मेज़ पर रख दिया ।

मैंने कहा, “शुक्र है, बला टली । चलिए अब खाना खा लीजिए । रज़िया कहती है, बड़ी भूख लगी है । अभी मग़रिब की अज़ान में पन्द्रह मिनट बाक़ी हैं ।”

तुरन्त उठे । मैंने दस्तरख़्वान बिछाया और खाना निकाला । वे खाने से फ़ारिग होकर मस्जिद गए और मैं रज़िया को लेकर तख़्त पर जा खड़ी हुई ।

आपा यह है, इस हफ़्ते की कहानी । सोचती हूँ, दो-चार दिन के लिए उन्हें लेकर आप लोगों की सेवा में हाज़िर होऊँ । ज़रा जी भी बहल जाएगा । कुछ ज़हनी उलझन भी कम हो जाएगी और फिर सब मिलकर आगे के लिए कुछ सोचेंगे भी ।

चलने के लिए मैंने उनसे कहा, वे भी तैयार हैं । आपका जवाब आ जाएगा, तो इंशाल्लाह हम रवाना हो जाएँगे, बस रकाब पर पैर समझिए ।

इस्तीफ़ा डिप्टी कमिश्नर के पास पहुँच गया । पहले तहसील में चर्चा हुई और अब तो बच्चे-बच्चे की ज़बान पर है । मौलाना तो कहते हैं, “ख़ूब किया, बहुत अच्छा किया । अल्लाह कोई न कोई रास्ता इससे अच्छा निकालेगा ।” मगर लोग लान-तान कर रहे हैं । उन सबका कहना है कि “यह तो अल्लाह की दी हुई नेमतों की नाशुक्रि है और भरे पेट में मुक्के मारना है । तरंग में आकर इस्तीफ़ा तो दे दिया है, मगर पछताना पड़ेगा ।”

मतलब यह कि जितने मुँह उतनी ही बातें, अब देखिए आगे क्या होता है ? कश्ती दरिया में डाल दी है, अल्लाह मालिक है । हमारा सबका सलाम क़बूल फ़रमाइए । भाई साहब से भी कहिए और सलमा को प्यार ।

बुशरा

चौदहवाँ खत

प्यारी आपा ! अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकतुह !!

आपसे विदा होकर हम सब खैरियत से घर पहुँच गए । चाहिए तो यह था कि आते ही आपको खैरियत का खत लिख देती, मगर आज कल में हफ़ता बीत गया । सोच यह रही थी कि वे कुछ करने लगे तो आपको इत्तला दूँ, अल्लाह का शुक्र है कि कल मामला तय पा गया और वे कल ही शाम की ट्रेन से आबिद खाँ और रहमतुल्लाह के साथ दिल्ली गए हैं । आज मैं आपको खत लिख रही हूँ । आप मेरे इस खत का बड़ा इंतज़ार कर रही होंगी और नाराज़ भी हो रही होंगी । अच्छा खैर, नाराज़ न हों, पहले इस हफ़ता की कहानी सुनिए ।

आपने और भाई जान ने जो मशविरा दिया था, उसके बारे में आबिद खाँ और रहमतुल्लाह से भी राय ली गई । उन दोनों ने भी हमारी राय को सही बताया और हिम्मत बढ़ाने के लिए उन्होंने जो शब्द कहे वे बड़े काम के थे । बात भी ठीक थी । रबी की फ़सल कट रही थी, शादी-ब्याह के दिन थे । रमज़ान का महीना, ईद की धूम-धाम । ऐसे सुनहरे मौक़े पर कोई भी कुछ न कुछ पैदा कर ही लेगा । कहाँ अख़्तर साहब जैसे पढ़े-लिखे, समझदार, जवान और हौसलामंद आदमी । शुरू-शुरू में तो वही झूठी आन-बान थी, जो आजकल के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे नौजवानों में होती है, मगर अल्लाह का शुक्र है कि अब उन्हें अगर कोई झिझक है तो यह कि रोज़गार के लिए पैसे की ज़रूरत है और यहाँ 'चील के घोंसले में माँस कहाँ ?' इसका हल उन्होंने यह निकाला कि अपनी साइकल बेचने को तैयार हो गए । इसका विरोध मैंने किया । आबिद खाँ और रहमतुल्लाह ने मेरा साथ देते हुए कहा कि यह साइकल आपको बेहद मदद देगी । इसलिए इसे अलग न कीजिए,.....“फिर ?”.....उनकी ज़बान से निकला, तो मैंने अपने कड़े और बालियाँ आगे रख दीं, और कहा, “लीजिए, यह सब आप ही का तो है, आखिर किस दिन काम आएगा और फिर मुझे ज़ेवर से कोई दिलचस्पी भी नहीं, अब कौन पहनता है इस तरह का ज़ेवर, रिवाज भी उठता जा रहा है ।

मेरे यह सब कहने पर भी 'वे' ज़ेवर लेने को तैयार नहीं हुए । क्या कहूँ आपसे, आपा ! आपके बहनोई साहब इस दर्जा ग़ैरतमंद हैं कि कभी-कभी मुझे शर्म-सी महसूस होने लगती है । उनकी ज़बान से “न” जो निकला तो आबिद खाँ और रहमतुल्लाह ने कहा, “दरअसल रोज़गार में पैसे-वैसे की इतनी ज़रूरत नहीं है कि इसके लिए गृहस्थी बेची जाए । रोज़गार में तो सबसे ज़्यादा ज़रूरत है “साख” की और साख़ क़ायम होती है ईमानदारी से । चलिए उठिए, अल्लाह

का नाम लेकर । आखिर हम सब दिल्ली से सामान लाते ही हैं, नगद-उधार हमारा काम चलता ही है । हम अपनी ज़मानत पर सामान ला देंगे ।”

रज़िया के भाई को अब भी झिझक थी । मगर चूँकि दीन का काम भी सब मिल-जुल कर करते हैं । रहमतुल्लाह, आबिद ख़ाँ और मुज़फ़्फ़र वग़ैरह मिला कर सात-आठ आदमियों की एक ऐसी जमाअत है जो गोया एक ख़ानदान है । सभी एक-दूसरे को भाई से ज़्यादा मानते हैं । सुब्हानल्लाह ! उसूल की यकसानियत और ईमान की पुख्तगी भी अल्लाह की कैसी अजीब नेमत है । कैसे-कैसे ग़ैर लोगों को इस तरह जोड़ देती है, जैसे वे मिल-जुल कर एक दीवार हों ।

हाँ आपा ! फिर तो बड़ा मज़ा आया । रज़िया के भाई ने जो धीमे शब्दों में इनकार किया तो सब लिपट गए । लगे एतराज़ों की बौछार करने : “तो इसके यह मानी हैं कि आप हमें पराए समझते हैं । अल्लाह न करे अगर कभी हम में से किसी का कोई काम हुआ, तो क्या हम भी आप की तरह से अलग-थलग ही रहें । फिर यह मशविरा और राय क्यों ली जाती है ? आप ही ने एक दिन किसी सहाबी के बारे में एक किताब से पढ़कर सुनाया था कि वे किसी यहूदी के गुलाम थे । यहूदी तो दौलत का पुजारी होता ही है, उसने उन सहाबी (रज़ि०) से कहा— अगर 300 पेड़ खजूर के लगा दो और इतना-इतना सोना दे दो तो तुमको आज़ाद कर दूँ । उन सहाबी (रज़ि०) ने यह बात अपने प्यारे रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से कही । हुज़ूर (सल्ल०) दूसरे सहाबियों (रज़ि०) को लेकर फ़ौरन चल पड़े । रसूल (सल्ल०) और सहाबियों ने घड़ी भर में पौधे लगा दिए । अल्लाह की कुदरत देखिए, उसी दिन कहीं से बैतुलमाल में सोना आ गया । हुज़ूर (सल्ल०) ने उन सहाबी को दिया कि जाकर यहूदी को दें और उसकी गुलामी से छुटकारा पा लें । अख़्तर साहब ! अब आप ही बताइए, हम सब को आपने उसी मुकद्दस रसूल और उन्हीं पाक हस्तियों की पैरवी करने पर ही तो जमा किया है ? अब अगर हम में से किसी को किसी वक़्त कोई ज़रूरत हो तो क्या हम अपने भाई के काम न आएँ ?”

यह और इसी तरह की बातें सभी दोस्तों ने कहीं और इन्हें राज़ी कर लिया । शाम की ट्रेन से आबिद ख़ाँ और रहमतुल्लाह के साथ उन्हें दिल्ली जाना पड़ा ।

वे दिल्ली गए हैं, मेरा दिल उनमें लगा है । अल्लाह उन्हें कामयाब वापस लाए । आप भी दुआ करें । नया-नया मामला है । मेरे दिल में तरह-तरह के ख़याल आ रहे हैं । रज़िया आराम से है । मेरा और रज़िया का सलाम क़बूल फ़रमाइए ।

वस्सलाम

आपकी बुशरा

पन्द्रहवाँ खत

आपा ! सलाम मसनून !!

मैने अपने पिछले खत में लिख दिया था कि खत के देर से लिखने की वजह क्या हुई मगर फिर भी आपने डाँट पिलाई । अच्छा लीजिए, यह खत मैं आपका खत मिलते ही लिख रही हूँ । मतलब यह कि इस हफ्ते में यह मेरा दूसरा खत है । पिछले खत की देर और इस खत की सवेर मिलकर औसत बराबर हो गई । अब तो आप खुश हुईं । आपा ! जैसी जल्दी आप को हमारा हाल जानने की है, उससे ज्यादा जल्दी मुझे बताने की है । सुनिए, फिर क्या हुआ ? दिल्ली से तीसरे दिन वापस हुए और पाँचवें दिन ठेले वालों ने एक गाँठ घर में आकर ला गिराई । मैंने पूछा— “क्या है इसमें ?” मुस्कुराते हुए जवाब दिया : कटपीस का माल है । आबिद खाँ और रहमतुल्लाह कहते थे कि उचित दामों में मिल गया है । खूब बिकेगा ।” गट्टा खोला गया तो रंग-बिरंग के टुकड़े नज़र आए । पड़ोस की लड़की अनवरी जो मुझ से पढ़ती है, उसकी बड़ी बहन सरवरी बैठी हुई थी । देखते ही कहने लगी— “ऐं ! यह क्या ? कैसे अच्छे-अच्छे जम्पर और फ्रॉक के लायक हैं ये टुकड़े ।” और यह कहकर वह अपने घर भागी । पलक झपकते मुहल्ले भर को खबर हो गई कि पेशकार साहब कटपीस का माल लाए हैं ।

आपा ! ज़रा अल्लाह का करम तो देखिए वास्तव में किसी ने वह जो कहा है कि ‘उसे फ़ज़ल करते देर नहीं लगती’ तो वाकई देर नहीं लगती । जिसने भी सुना, आकर देखा और कहा कि भई, भाव बताओ तो खरीदा जाए । ईद आ रही है, बच्चों के लिए ये बड़े अच्छे पीस हैं । रज़िया के भाई को भाव याद न रहा । नया-नया मामला, क्या जानें किस तरह “भाव” बताया जाता है ? यह मुश्किल रहमतुल्लाह और आबिद खाँ ने आकर हल कर दी । एक-एक तरह के टुकड़े अलग-अलग किए । कोई बीस-पचीस किस्म और रंग के टुकड़े थे । गज़-गज़ भर, डेढ़-डेढ़ और दो-दो गज़ के, कुछ तीन-तीन और चार-चार गज़ के भी थे । उन्हें तो बिल्कुल अलग कर लिया । आध गज़ से छोटा कोई टुकड़ा न था ।

किस्सा मुखतसर यह कि आबिद खाँ और रहमतुल्लाह ने हर तरह के टुकड़ों का “भाव” बता दिया । मैंने रज़िया से कहलाया कि मुनाफ़ा कम-से-कम रखा जाए । अपने इस्लामी उसूल किसी हालत में भुलाए न जाएँ और जो दाम एक से लिए जाएँ, वही सबसे लिए जाएँ चाहे बच्चा लेने आए या बूढ़ा । मैंने रज़िया के भाई जान को बुलाकर प्यारे रसूल (सल्ल०) की वह हदीस, जो आपने किसी

खत में लिख भेजी थी, सुनाई कि 'जिसने कारोबार किया और सच बोला और किसी को धोखा न दिया, तो वह जन्नत में मेरे साथ होगा।' शायद इस तरह या इससे मिलती-जुलती थी वह हदीस।

उन्होंने सुना तो कहा— "यह सब मेरे भी ज़हन में है।" आबिद खाँ और रहमतुल्लाह के जाने के बाद मैंने जाकर देखा तो हर प्रकार के टुकड़ों के ढेर पर एक-एक परचा क्रीमत का पड़ा पाया। मैंने एक परचा उठाकर पढ़ा— "क्रीमत आठ रुपया" दूसरा परचा उठाया, "क्रीमत बारह रुपया" इसी तरह पन्द्रह रुपया और बीस रुपया अलग-अलग क्रीमतें मालूम हुईं। हिसाब जो लगाया तो मैंने दिल में कहा : "इतना सस्ता !"

मैंने उन्हें और उन्होंने मुझे देखा। मुहल्ले की कुछ परदानशीं औरतें आ गई थीं, वे मेरे कमरे में बैठी थीं। कुछ हिन्दू बहनें और दूसरी औरतें भी थीं, जिनसे मेरी मुलाकात थी, वे टुकड़े देख रही थीं। सस्ते दाम जो मालूम हुए तो सबने छाँटना शुरू कर दिया। परदानशीं औरतों ने मुझ से कहा : "ज़रा अख्तर मियाँ से कहिए बाहर चले जाएँ, तो अपनी-अपनी पसन्द का छाँट लें, वरना सब अच्छा-अच्छा छँट जाएगा।"

यह सुनकर मैं दिल ही दिल में हँसी, उन्हें बाहर भेजा। तमाम औरतें पिल पड़ीं। मैं यह तो ज़रूर कहूँगी कि औरतें होती बड़ी ज़ज्बाती हैं। जिस किसी को जैसा पसन्द करते देखा, बस वैसा ही उन्होंने भी ले लिया। इस प्रकार सभी ने अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक अपने और बच्चों के लिए टुकड़े लिए। मुझे इससे खुशी हुई कि औरतों को घर बैठे बाज़ार से सस्ता कपड़ा उनकी पसन्द का मिल गया।

लगभग दो घंटे में मुहल्ले के अन्दर औरतों-औरतों में पाँच-छः सौ रुपये का कपड़ा बिक गया। जुहर के वक़्त आबिद खाँ और रहमतुल्लाह आए। ठेले पर माल लदवा कर बाज़ार ले गए। साथ-साथ वे भी गए। मग़रिब के बाद लौटे तो मैंने देखा कि जेब में नोट भरे हैं और माल करीब-करीब आधा ख़त्म। कहने लगे, "बी-बुशरा ! ज़रा आँचल फैलाओ तो"। मैंने दोपट्टे का आँचल आगे फैला दिया। उन्होंने नोट उसमें डाल दिए और मुस्कुराने लगे। बाज़ार का सारा हाल बयान किया। बताया कि बाज़ारवालों को बड़ी हैरत थी कि पेशकार साहब यह क्या ले कर बैठे हैं। कोई फन्ती कस रहा था, तो कोई हंसी उड़ा रहा था। कुछ ने तो मुँह पर कह दिया : "उस कटपीस में इज़्जते-सादात भी गई !" कुछ बूढ़े और ज़माना देखे हुए लोगों ने हिम्मत भी बढ़ाई। मतलब यह कि जितने मुँह उतनी बातें।

मैंने उनकी ज़बानी सारा हाल सुना तो यह भी मालूम हुआ कि वे लोग जो हमारे खिलाफ़ थे और हमसे बात करना भी जिन्हें गवारा न था, उन्होंने भी आकर अपने बच्चों और औरतों के लिए टुकड़े ख़रीदे । बोले और बात भी की । मुझे तो यह जानकर और भी ज़्यादा खुशी हुई कि उन लोगों से रज़िया के भाई जान का रवय्या बहुत अच्छा रहा । मैं दिल ही दिल में अल्लाह की इतनी शुक्र गुजार हुई कि शुक्रो-एहसान और खुशी के मिले-जुले जज़्बात से मेरी आँखों में आँसू आ गए । मैंने उनसे कहा— “अब आप इस मौके से फ़ायदा उठाइए । उन सबसे मेल बढ़ता ही रहे, ताकि आप को दीन की बातें फैलाने में सहायता मिले । शायद इसीलिए प्यारे रसूल (सल्ल०) ने मुसलमानों को कारोबार करने पर उभारा है और फ़रमाया है कि रोज़ी के दस हिस्सों में से नौ कारोबार में है ।

आपा ! तजुर्बा तो यहीं हो रहा है कि रोज़ी के दस हिस्सों में नौ कारोबार में है । इससे भी आगे यह कि अगर कारोबार के साथ-साथ इंसान चाहे तो अपने मामलों को साफ़ रखकर इस्लामी आदेशों को आसानी से दूसरों तक पहुँचा सकता है । आप को यह जानकर खुशी होगी कि रज़िया के भाई ने किसी वक़्त भी अल्लाह और रसूल (सल्ल०) के आदेशों और सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया । दाम भी मुनासिब लिए और झूठ से भी बचे ।

दूसरे दिन आबिद ख़ाँ और रहमतुल्लाह के मशबिरे से उन्हीं के साथ बचा-खुचा माल सायकल पर लाद कर करीब के गाँव के बाज़ार गए । वे दोनों भी अपनी-अपनी दुकान ले गए थे । गाँव में भी अच्छा ख़ासा माल निकल गया । लौट कर आए तो छोटा-सा बुक़चा साइकल से उतारा और कहने लगे कि “कल दिल्ली जाना है ।” मैंने पूछा, “क्या सब माल बिक गया ?” कहने लगे— “हाँ ! गाँव के दो-तीन छोटे-मोटे व्यापारियों ने देखा, पसन्द किया, दाम तय हुआ । मैंने कम मुनाफ़े पर आबिद ख़ाँ की राय से दे दिया । ये कुछ टुकड़े रह गए हैं ।”

आपा ! रंग-ढंग तो अच्छे नज़र आ रहे हैं । अल्लाह ने चाहा तो हम सब कामयाब होंगे । आप भी दुआ करती रहें । मैं दो-तीन दिन के बाद फिर ख़त लिखूँगी । बस वे दिल्ली जाकर वापस आ लें । फिर मैं सारा हाल कह सुनाऊँ । भाई जान से सलाम और सलमा को दुआ कहिएगा ।

वस्सलाम

आपकी
—बुशरा

सोलहवाँ खत

प्यारी आपा ! सलाम मसनून !!

किसी तमहीद के बिना अर्ज है कि सुबह को वे दिल्ली रवाना हुए । लगभग दस बजे एक गरीब हिन्दू औरत अपने दो बच्चों को लेकर आई । नमस्ते किया । मैंने कहा : “आओ बहन ! बैठो । कहो, खैरियत है ? कैसे आना हुआ ?

आपा ! आप तो जानती हैं, आजकल हिन्दी का जमाना है । मैंने रज़िया के भाई जान से हिन्दी ज़बान के कुछ शब्द सीख लिए हैं, ताकि अपनी हिन्दू बहनों को अपनी बात आसानी से समझा सकूँ । हाँ, तो मैंने उस बहन को इज़्जत से बिठाया । रज़िया के लिए दो केले रखे थे, वे मैंने उसके बच्चों को दे दिए ।

यह आव-भगत देखकर वह रोने लगी । मैंने कहा, “बहन ! खुदा न करे, आप रोती क्यों हैं ?” कहने लगी—“दीदी ! मैं एक विधवा औरत हूँ । आप ही के मुहल्ले के पास वाले मुहल्ले में उस नुक्कड़ पर रहती हूँ । ईश्वर ने मुझे भी सब कुछ दे रखा था, लेकिन शौहर के मरने पर मैं अभागिन हो गई । आप जानती हैं कि हिन्दू जाति में विधवा विवाह का रिवाज नहीं । यदि ऐसी हालत में किसी के लड़के-लड़कियाँ भी हों तो जानिए कि बेचारी दुनिया-जहान से गई । दीदी ! मेरे साथ भी ये दो बच्चे हैं । मेरा कोई सहारा नहीं । आप के यहाँ से करीम भाई अपने बाल-बच्चों के लिए टुकड़े ले गए थे । कहीं इन दोनों (कमला और रमेश) ने भी देख लिया, बस मचल गए । कहने लगे कि माता जी ! हमें भी ला दीजिए । और माता जी का हाल यह है कि दीदी देखिए ज़रा !”

बेचारी ने अपना रोना रोते हुए अपना फटा-पुराना जम्पर जो उठाया तो मैंने देखा कि भूख से उसका पेट पीठ से लग गया था । मैं काँप गई । मैंने अपना मुँह ढाँप लिया । आप तो जानती हैं कि मैं कितने कमज़ोर दिल की हूँ । मैं रोने लगी । फिर उस हिन्दू बहन और दोनों बच्चों को उस गठरी के पास ले गई जिसमें बचे-खुचे टुकड़े रह गए थे । तीनों के सामने खोला और कहा— “बहन ! छॉट लो अपनी पसन्द का । वे माल लेने गए हैं । तुम एक हफ़्ते के बाद फिर आना, तो मैं तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों के लिए अच्छे-अच्छे टुकड़े दूँगी । पैसों का खयाल न करना, यह सब अल्लाह का दिया हुआ है और अल्लाह के बन्दों के लिए ही है ।” यह सुनकर खुश तो हुई मगर थी बड़ी ग़ैरतमंद और शरीफ़ । सिर्फ़ उतना कपड़ा लिया, जिसमें एक-एक कुर्ता हो सके । “बस” मैंने कहा भी मगर उसने कहा “बस, ईश्वर आप को और दे ।”

तीसरे दिन रज़िया के भाई दिल्ली से वापस आए। इस बार अकेले गए थे। मैं यँ ही परेशानी हो रही थी कि नातजुर्वेकार आदमी हैं, खुदा जाने क्या बने, क्या न बने ? मगर यह मेरा भ्रम ही था। पढ़ा-लिखा आदमी इस्लामी उसूलों पर अगर करोबार करे तो अनपढ़ से लाख गुना बेहतर करता है। दिल्ली से वापस आकर बताया कि सेठ राम जी लाल भोला नाथ इतनी जल्दी रक़म वापस होते देखकर बहुत खुश हुए। व्यापार के भेद बताने लगे। कुछ ऐसी बातें बताईं, जिनको अपनाना हमारे लिए मुमकिन न था। जैसे यह कि “उधार लेने वाले को सौदा महँगा दो, माल की माँग देखकर भाव बढ़ा दिया करो।” लेकिन सेठ साहब की इन नसीहतों को शुक़िए के साथ रद्द कर दिया गया, तो सेठ साहब को बड़ी हैरत हुई कि यह किस किस का व्यापारी है ? ख़ैर सेठ साहब को अपने दाम से काम, उनको रक़म अदा कर दी गई, साथ ही उनसे यह भी कहा : “सेठ जी ! ईश्वर को भी मुँह दिखाना है, एक दिन।”

यह सुना तो सेठ जी लिपट गए और कहने लगे— “क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए। मैंने तो अनुभव की बात कही थी, आप बड़े ईमानदार हैं, जितना चाहें माल ले जाएँ, अपनी दुकान समझिए।” यह कहते हुए एक गाँठ के बजाए दो गाँठें स्टेशन भेज दीं और चलते समय दो गाँठों की बिल्टी हाथ में दे दी। नफ़ा खाने वालों की सोच भी अजीब होती है।

लीजिए, अब इस बार दो गाँठें बेपैसे-कौड़ी के ही आ गईं। लोग कहते हैं कि व्यापार में झूठ के बिना काम नहीं चलता। हमारा तजुर्बा है कि व्यापार सच ही के बलबूते चलता है। लोग कहते हैं कि आजकल लोगों को रोज़गार नहीं मिलता। हमारा अनुभव यह है कि रोज़गार लोगों को ढूँढ रहा है, कोई करने वाला हो, मेहनत, दयानत और ईमानदारी से करे तो देखे कि अल्लाह किस प्रकार उस पर अपनी मेहरबानी करता है। फिर अगर वह इंसान कोई नेक काम करे और अल्लाह ही के लिए करे तो फिर क्या कहना ! इस डेढ़-दो महीने में यह तजुर्बा हुआ कि सच्ची हलाल की कमाई घर में आई और ख़ूब आई। मेहनत करने से उनकी सेहत भी ठीक हो गई। वैसे जब पेशकार थे तो दो चपातियाँ खाते थे और हाज़मा ख़राब होने की शिकायत किया करते थे। अब ऐसी कोई शिकायत नहीं। नौकरी के ज़माने में अगर मैंने किसी फ़कीर को कुछ दे दिया तो दे दिया, उन्होंने काहे को एक फूटी कौड़ी किसी को अल्लाह की राह में दी होगी। अब यह हाल है कि इधर किसी ने हाथ फैला कर कहा, “अल्लाह भला करे” उधर उन्होंने सिक्के दो-सिक्के जो हाथ लगे दे दिए। लोगों से मेल-जोल का यह हाल है कि दोस्त-यार बढ़ते ही जा रहे हैं, रोज़ाना हज़ारों आदमी नज़र से गुज़रते हैं,

सैकड़ों से बातचीत होती है, दूसरे-तीसरे दिन एक-न-एक रफ़ीक़ दीन के काम के लिए मिलता ही रहता है। परसों जुमे को मौलाना के दर्स में पच्चीस-तीस आदमी थे, उनमें से ग्यारह तो वे थे जिन्होंने मेरे शौहर के साथ अहद किया है कि भलाई फैलाने, बुराई मिटाने और हलाल रोज़ी कमाने ही में जीवन का हर पल बिता देंगे, और जो भी काम करेंगे, अल्लाह की खुशी के लिए करेंगे।

आपा !.....कहना बहुत कुछ है, कारोबार के फ़ायदे, माली लिहाज़ से और दीनी हैसियत से, इतने ज़्यादा सामने आए हैं कि मैं क्या कहूँ, मेरा बस चले तो मैं अपने सभी मिलनेवालों से ज़बरदस्ती व्यापार कराऊँ। मुहल्ले के लोग जो मुखालिफ़ थे, एक-एक करके सब हम से मिलते जाते हैं। पुरानी बातें भूल रहे हैं। नए सिरे से मेल बढ़ा रहे हैं और कह रहे हैं कि हम तो बिल्कुल अंधेरे में थे, नीम मुल्ला क्रिस्म के लोगों ने इस्लाम के बारे में न जाने क्या समझा रखा था।

मुखतसर यह कि अख़्तर साहब का दिल व्यापार में लग गया है। अल्लाह का बड़ा शुक्र है कि उसने हमें आजमाइश से बचा लिया। अब 'अख़्तरुल-इस्लाम' साहब पेशकार नहीं हैं, बल्कि अख़्तर साहब, और कुछ लोगों के भैया हो गए हैं। कटपीस बेचते हैं। घर के अन्दर कुछ टुकड़े में रख लेती हूँ। परदादार औरतों को सहूलत हो गई है। उन्हें सस्ते दामों अच्छा कपड़ा घर बैठे मिल जाता है। बस मैं खाना पकाने और बच्चों को पढ़ाने के बाद परदादार औरतों की सेवा ही में लगी रहती हूँ और बातों-बातों में दीन की एक न एक बात बता देती हूँ। अब जो चाहे अपने पालनहार की राह अपना ले।

आपा ! बहुत दिन लगे आपको एक आदमी की तर्बियत में। मैंने आप के मशविरों पर अमल किया। अल्लाह तआला ने तौफ़ीक़ दी। अब मैं बहुत खुश हूँ, हर पहलू से खुश हूँ। अल्लाह अच्छा ख़ासा पहनने-खाने को दे रहा है। वे भी मुतमइन हैं। नौकरी से कई गुना अच्छे रहे। हक़ बात कहते और हलाल कमाते-खाते हैं। ख़ैर-ख़ैरात भी करते हैं। और अब मुझसे भी बड़ी मुहब्बत करने लगे हैं। हलाल कमाई, दीन की ख़िदमत, मुहब्बत करने वाला शौहर और क्या चाहिए एक औरत को ! आपा ! मुझे सब कुछ मिल गया। मैं अपनी इस जिन्दगी पर अल्लाह का हज़ार-हज़ार शुक्र अदा करती हूँ और आप के लिए मेरे रोएँ-रोएँ से दुआ निकलती है।

आपकी दुआओं की मुहताज
आपकी-बुशरा